वातुलशुद्धाख्यं तंत्रम्

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ीमठ
वाराणसी

पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी

शोधप्रकाशन ग्रन्थमाला— ३०

वातुलशुद्धाख्यं तन्त्रम्

सम्पादकः
राष्ट्रियपण्डितः श्रीव्रजवल्लभद्विवेदः
निदेशकः, शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानम्

प्रकाशकः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी - २२१ ००१

प्रकाशक:
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ीमठ
वाराणसी - २२१ ००१

प्रथम संस्करण २००४

मूल्य : रु. ३०० (सजिल्द), रु. २०० (अजिल्द)

अक्षर संयोजन
शिव शक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस
जंगमवाडी मठ, वाराणसी

मुद्रक
मित्तल ऑफसेट्स
सुन्दरपुर, वाराणसी

Research Publications Series— 30

VĀTULAŚUDDHĀKHYAM TANTRAM

Edited by

Rashtriya Pt. Vrajavallabha Dwivedi
Director, Shaiva Bharati Shodha Pratishthanam

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Published by :
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi - 221 001

First Published 2004

ISBN 81-86768-56-4 (Hb)
ISBN 81-86768-57-2 (Pb)

Price : Rs. 300.00 (Hb), Rs. 200 (Pb)

Laser Typeset at :
Shiva-Shakti Computer Process
Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Printed at :
Mittal Offset
Sundarpur, Varanasi

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-संस्थापकानां

श्रीकाशीविश्वाराध्यज्ञानसिंहासनाधीश्वराणां

श्री १००८ जगद्गुरु-डॉ. चन्द्रशेखरशिवाचार्यमहास्वामिनां



शुभाशीर्वचनम्

श्रीजगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान की अंगसंस्था शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा 'वातुलशुद्धाख्य तंत्र' को शिवार्पित करते हुए हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। यह वातुल नामक सुप्रसिद्ध आगम का सार रूप है। जैसे दूध से घी निकालते हैं, उसी प्रकार वातुल आगम से सार निकाल कर वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का निर्माण किया गया है। यही बात आगम में—

वातुलाख्ये महातन्त्रे दध्नो घृतमिवोद्धृतम्।
सारात् सारं समुद्धृत्य शुद्धाख्यं तन्त्रमुत्तमम्।।

इस प्रकार कही गई है।

इस आगम में स्कन्द और शिव का संवाद है। वातुल आगम का सार सुनने की जिज्ञासा करने पर भगवान् शिव स्कन्द को इसका उपदेश देते हैं।

इस आगम में दस पटल हैं। इनमें क्रमशः तत्त्व वर्ण, चक्र, वर्ग, मन्त्र, प्रणव, ब्रह्म, अंग, मन्त्रज्ञान और कीलक नाम के दस विषय वर्णित हैं। इस आगम में प्रतिपादित ये सभी विषय अपूर्व और विलक्षण हैं। मुख्य रूप से तृतीय पटल में वर्णित चक्रोद्धार विधि की और नवम पटल में मन्त्र के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है। यहाँ पर मन्त्रमय लिंग की उद्धारविधि प्रदर्शित है। यहाँ प्रतिपादित चक्रोद्धारविधि और मन्त्रोद्धारविधि को चित्रों के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। चक्रोद्धार का सर्वांगपूर्ण चित्र प्रो. प्रभाकर आपटे जी ने तैयार किया है और दिव्य मन्त्रमय लिंग का रेखाचित्र कन्नड़ लिपि में कर्णाटक के हुबली निवासी शंकरप्पा अच्चप्पा टोप्पगि के द्वारा १९१४ में मैसूर से प्रकाशित "तन्त्रसंग्रह" नामक ग्रन्थ से लिया गया है। इस मन्त्रमय लिंग में पट्टिका, कञ्ज, कण्ठ, अब्ज पट्टिका और आज्यप्रधारिका नामक छः अंगों को यहाँ देखा जा सकता है। इस प्रकार उद्धृत मन्त्रमय लिंग में प्रथमतः हृदय आदि षडंग मन्त्रों का, अपने-अपने वर्णों से अलंकृत आधार आदि षट् चक्रों का, सूक्ष्म पंचाक्षर, स्थूल पंचाक्षर और षडक्षर मन्त्रों का एवं षडध्व का न्यास किया जाता है। इसके अलावा इस मन्त्रमय दिव्य लिंग में कामिकादि वातुलान्त अट्ठाईस सिद्धान्तागमों में वर्णित सभी मन्त्रों का भी न्यास किया जाता है।

इस ग्रन्थ के नवम पटल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के मन्त्रों का, स्त्री-पुरुष-नपुंसक मन्त्रों का और शुद्ध-मिश्र-संकीर्ण मन्त्रों का स्वरूप बताया गया है। मन्त्रों के इस प्रकार के भेद का विश्लेषण प्रायः अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इसलिए इस आगम का यह एक अपूर्व विषय है। इस आगम के इन पटलों में प्रतिपादित गंभीर विषयों के बारे में माननीय संपादक पंडित व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने अपनी प्रस्तावना में विस्तार से बताया है। जिज्ञासुजन उसका अवश्य मनन करें।

हमारे शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के निदेशक आगमशास्त्र के अनुवादक भी हैं। वृद्धावस्था के कारण शरीर अत्यन्त अस्वस्थ रहते हुए भी आपने अतिशय परिश्रम से अनुवाद और संपादन कार्य निभाया है। आपके कुशल मार्गदर्शन के कारण अभी तक ३५ से भी अधिक ग्रन्थ

प्रकाशित हो चुके हैं। हम आशा करते हैं कि भूतभावन भगवान् विश्वनाथ की कृपा से आपका स्वास्थ्य सुधरे और आपसे निरन्तर साहित्य की सेवा होती रहे। चक्रोद्धार और मन्त्रमय दिव्य शिवलिंग के चित्रों को तैयार करने में पुण्यपत्तन निवासी, मंडलों के विशेषज्ञ प्रो. प्रभाकर आपटे जी के भी उत्तम स्वास्थ्य की कामना करते हैं। भगवान् विश्वनाथ की कृपा से उनकी भी साहित्यसेवा निरन्तर चलती रहे। इस ग्रन्थमाला के प्रकाशन में अहर्निश प्रयत्नरत डॉ. जी. सी. केण्डदमठ, श्री चिदानन्द ओ. हिरेमठ (कसगी) आदि को भी अनन्त मंगलाशीर्वाद।

इत्याशिषः

प्रस्तावना

स्कन्द और ईश्वर (भगवान् शिव) के संवाद के रूप में इस तन्त्र की प्रवृत्ति हुई है। २८ सिद्धान्तागमों के अन्तिम वातुलतन्त्र को एक हजार श्लोकों में संक्षिप्त कर उस महातन्त्र में वर्णित शिवज्ञान को यहाँ सार रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें दस पटल हैं और इनमें क्रमशः तत्त्व, वर्ण, चक्र, वर्ग, मन्त्र, प्रणव, ब्रह्म, अंग, मन्त्रज्ञान और कीलक नाम के दस विषय वर्णित हैं।

इस क्रम के अनुसार **प्रथम** तत्त्वभेद पटल में शिव, सदाशिव और महेश नामक तीन तत्त्वों का स्वरूप विस्तार से वर्णित है। इनमें शिव तत्त्व निष्कल, सदाशिव सकल-निष्कल और महेश सकल है। शिवतत्त्व एक ही अपने में परिपूर्ण है। सदाशिव तत्त्व के पाँच और महेश के पचीस भेद हैं। इस प्रकार सब मिलाकर इकतीस तत्त्व यहाँ वर्णित हैं। शिवतत्त्व का स्वरूप बताने के बाद यहाँ परा, आदि, इच्छा, ज्ञाना और क्रिया नामक पाँच शक्तियाँ वर्णित हैं। ये शक्तियाँ भी निष्कलस्वरूप हैं और शिव से इनकी सृष्टि होती है।

पराशक्ति और आदिशक्ति से सादाख्य तत्त्व की निष्पत्ति होती है। शिव, अमूर्त, मूर्त, कर्तृ और कर्म के नाम से सादाख्य तत्त्व के पाँच भेद हो जाते हैं। सदाशिव, ईश, ब्रह्मा, ईश्वर और ईशान के नाम से भी ये जाने जाते हैं। आगे इन पाँचों सादाख्य तत्त्वों का स्वरूप विस्तार से वर्णित है। ये पाँचों सादाख्य तत्त्व एक-दूसरे पर आश्रित हैं।

इनमें से पंचतत्त्वात्मक कर्मसादाख्य से पिण्ड की उत्पत्ति होती है। इस शिवमय पिण्ड में सभी तत्त्व समाहित हैं और इसीसे समस्त शास्त्रों की, सिद्धान्तों की और महेश की भी उत्पत्ति होती है। कर्मेश के ध्यान के प्रसंग में यहाँ अंग, प्रत्यंग, सांग और उपांग नामक चार अंगों का तथा दशविध गुणों (चिह्नों) का लक्षण भी बताया गया है। दिशाओं के आधार पर पाँच वक्त्रों (मुखों) का क्रम बताते हुए और कर्मेश की अन्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए यहाँ कहा गया है कि लिंग, स्थण्डिल, कुम्भ अथवा हृदय में इनका ध्यान, पूजन आदि किया जाता है। आवाहन आदि का प्रकार भी यहाँ प्रदर्शित है।

इस प्रकार कर्मसादाख्य के स्वरूप को विस्तार से बताने के बाद इससे उत्पन्न महेश के पचीस भेदों का स्वरूप यहाँ वर्णित है। आगे इन पचीस शिवावतारों की नामावली दी गई है और बताया गया है कि इन्हीं से रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं की उत्पत्ति होती है। उमा आदि शक्तियों की उत्पत्ति का क्रम भी यहाँ संक्षेप में दिखाया गया है। इस प्रकार प्रथम पटल में इकतीस तत्त्वों का स्वरूप परिपूर्ण होता है।

द्वितीय वर्णभेद पटल में वर्णों का परिचय दिया गया है। इस तन्त्र में अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त ५१ वर्ण स्वीकृत हैं। वर्णों की त्रिविध लिंगता यहाँ प्रदर्शित है। देवता ही वर्णों का स्वरूप धारण कर लेते हैं, वर्णों से ही मन्त्रों की उत्पत्ति होती है और साधक इनकी सहायता से अपनी मनोकामना पूरी करते हैं। शिव, बिन्दु, नाद, शक्ति, शब्द, वाग्भव, कला, विकला और मन्त्र— यह है इनकी सृष्टि का क्रम। इनमें बिन्दु पराशक्ति, नाद आदिशक्ति, शक्ति इच्छाशक्ति, शब्द ज्ञानशक्ति, वाग्भव क्रियाशक्ति, कला षोडश स्वर और विकला व्यंजन कहलाते हैं। वर्ण, बीज, अर्ण, लिंग, अक्षर और मात्रा— ये वर्णों के पर्यायवाची शब्द हैं। इसी तरह कला, मात्रा, स्वर, जीव, प्रकृति, विकृति, प्राण, आत्मा, पुरुष और देही— ये दस कला के पर्याय हैं और विकला से व्यंजनों का ग्रहण किया जाता है। वर्णों की उत्पत्ति, नाम-रूप भेद, त्रिविध लिंगरूपता, पृथिवी आदि पाँच तत्त्वों की अंशरूपता, प्रकृति आदि भेद, ह्रस्व आदि त्रिविध भेद, प्रत्येक वर्ण की देवता और उनके रक्त आदि रंगों का निरूपण करते हुए यहाँ उनकी आराधना से प्राप्त होने वाले फलों का भी परिचय दिया गया है। वर्णों के कला-विकला आदि भेद, स्थूल-सूक्ष्म भेद और जीवोपाधिविचार के साथ मन्त्रोद्धार तथा बीजन्यास का क्रम और अवसर भी यहाँ प्रदर्शित हैं।

तृतीय पटल में चक्र के उद्धार (निर्माण) की विधि प्रदर्शित है। इस चक्र में सभी देवताओं और वर्णों की स्थिति मानी गई है। महेन्द्र पर्वत आदि पवित्र स्थानों में इसकी आराधना की जाती है। चक्र के लेखन का और उसमें देवताओं के प्रतिनिधि वर्णों के विन्यास का प्रकार यहाँ विधिवत् बताया गया है। ग्रन्थ में संयोजित चित्र की सहायता से इनके क्रम को समझा जा सकता है।

यहाँ रंगे हुए दो धागों से पूर्व और पश्चिम तथा दक्षिण और उत्तर दिशाओं में बारह-बारह अंगुल की रेखाएँ खींच कर चतुष्कोण बनाया जाता

है। इस चतुष्कोण के मध्य में भी लघु चतुष्कोण की रचना की जाती है। इसमें वृत्त बनाकर कर्णिकायुक्त चतुर्दल कमल की रचना की जाती है। इसके बाहर एक-एक अंगुल के अन्तर पर अन्य तीन वृत्त बनाये जाते हैं। प्रथम में अष्टदल, द्वितीय में षोडशदल और तृतीय वृत्त में चतुर्विंशतिदलों की रचना की जाती है। इनके ऊपर पुनः एक-एक अंगुल के अन्तर पर तीन वृत्त बनाये जाते हैं। अन्त में चारों तरफ मुकुलित कमलों की बत्तीस आकृतियाँ बनाई जाती हैं। सूत्र (धागे) लाल, दल शुक्ल, कर्णिका पीत और बीजाक्षर कृष्ण वर्ण के होने चाहिए। बाहरी तीन वृत्तों का वर्ण क्रमशः लाल, काला और सफेद रंग का रहता है। अन्तिम ३२ मुकुल लाल रंग के होते हैं।

कर्णिका के मध्य में आधार शक्ति का और चार दलों में अम्बिका आदि चार शक्तियों का पूजन किया जाता है। इसी तरह से प्रथम आवरण में वामा आदि आठ शक्तियों का, द्वितीय आवरण में अष्टमूर्ति शिव और आठ गणेशों का, तृतीय आवरण में आठ विद्येशों आठ लोकपालों और आठ वसुओं का पूजन विहित है। बाहरी तीन वृत्तों में अग्नि, सोम और सूर्य की तथा मुकुलों में वास्तुदेवों की उपासना की जाती है। यह है देवता-न्यास क्रम।

वर्णों का न्यास इस प्रकार किया जाता है— कर्णिका के मध्य में शिवजीब हकार का, पूर्व पत्र में बिन्दु (ँ) का, दक्षिण पत्र में आत्मबीज ळकार का, पश्चिम पत्र में सूक्ष्म नाद (·।·) का तथा उत्तर पत्र में विद्याबीज क्षकार का लेखन विहित है। प्रथम में आठ, द्वितीय में सोलह और तृतीय आंवरण में चौबीस बीजाक्षरों का लेखनक्रम ग्रन्थ के पृ. ३६-३७ में देखा जा सकता है। पटल के अन्त में चक्र की पूजा का और यन्त्र के रूप में उसके धारण का फल वर्णित है।

वर्गभेद नामक **चतुर्थ** पटल में प्रथमतः स्थिति, सृष्टि और संहार नाम के तीन वर्गों का विधान है। इनमें से स्थिति वर्ग के तीन, सृष्टि वर्ग के आठ और संहार वर्ग के पाँच भेद बताए गये हैं। पूर्व पटल में उक्त चक्र में जिस क्रम से वर्णों का विन्यास किया गया है, वह स्थिति वर्ग है। इनमें प्रथमावरण में न्यस्त आठ वर्णों का प्रथम वर्ग, द्वितीय आवरण में न्यस्त सोलह स्वरों का द्वितीय वर्ग और तृतीय आवरण में न्यस्त २४ व्यंजनों का तृतीय वर्ग बनता है। प्रासाद मन्त्रों का उद्धार इस स्थिति-मार्ग से किया जाता है।

अकार से लेकर ळकार पर्यन्त क्रम को सृष्टि-मार्ग कहा गया है। इनमें अ-क-च-ट-त-प-य-श— ये आठ वर्ग हैं। इस सृष्टिक्रम से सदाशिव, पंचब्रह्म, षडंग तथा अन्य समस्त सौम्य मन्त्रों का उद्धार किया जाता है।

ळकार से लेकर अकार पर्यन्त विपरीत क्रम से वर्णों का विन्यास संहारक्रम कहलाता है। इनमें ळकार से लेकर यकार पर्यन्त दस वर्णों का प्रथम वर्ग पार्थिव, मकार से लेकर तकार पर्यन्त दस वर्णों की द्वितीय वर्ग आप्य, णकार से लेकर चकार पर्यन्त दस वर्णों का आग्नेय, ङकार से लेकर ऐकार पर्यन्त दस वर्णों का मारुत और एकार से लेकर अकार पर्यन्त ११ वर्णों का वर्ग व्योम कहलाता है। रौद्र मन्त्रों का उद्धार इसी क्रम से किया जाता है।

इस प्रकार तीन प्रकार के वर्गों का स्वरूप बताने के बाद कर्णिका स्थित हकार वर्ण का, १२ पर्यायों की व्युत्पत्ति के साथ, परिचय दिया गया है। आगे चतुष्पत्रों में स्थित बिन्दु, ळकार, नाद और क्षकार के भी पर्यायों को देकर प्रथम आवरण स्थित सकार आदि आठ वर्णों के भी पर्याय दिये गये हैं। द्वितीय आवरण स्थित स्वरों को यहाँ कला तथा तृतीय आवरण में स्थित व्यंजनों को विकला कहा गया है। अकार के पर्यायवाची शब्दों का भी परिगणन यहाँ किया गया है। इस प्रकार इस पटल में वर्णित वर्गों के वर्णों को भलीभाँति जान लेने पर साधक मन्त्रों के उद्धार में समर्थ हो जाता है।

आगे के **पंचम** पटल में इसी पद्धति से उद्धृत मन्त्रों के माहात्म्य को बताते हुए पहले **मन्त्र** पद की व्युत्पत्ति बताई गई है। मन्त्रोद्धार के लिए तृतीय पटल में उक्त मण्टप-निर्माण और चक्रलेखन की प्रक्रिया का स्मरण कराते हुए यहाँ कहा गया है कि सर्वप्रथम चतुर्थ पटल में उक्त स्थिति वर्ग के क्रम से प्रासाद मन्त्र का उद्धार करे। **प्रासाद** पद की व्युत्पत्ति के साथ यहाँ शुद्ध, मूल, तत्त्व, आदि और आत्मा नामक पंचविध प्रासाद मन्त्रों का उद्धार-क्रम बताया गया है। प्रासाद मन्त्र शिव मन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। पंचविध सादाख्य मन्त्र सदाशिव के मन्त्र माने गये हैं। ये सौम्य स्वरूप के हैं। सृष्टि मार्ग (वर्ग) से इनका उद्धार किया जाता है। पंचाक्षर, षडक्षर, अष्टाक्षर, नवाक्षर और दशाक्षर मन्त्रों के रूप में पंचविध सादाख्य मन्त्रों की उद्धारविधि यहाँ बताई गई है। विभिन्न कामनाओं की सिद्धि के लिए इन मन्त्रों की आराधना की जाती है। सदाशिव के पंचविध सादाख्य मन्त्रों के उद्धार के क्रम को बताने के बाद

संहार क्रम (वर्ग) से उद्धृत होने वाले त्रिविध महेश-मन्त्रों का उद्धार यहाँ किया गया है। त्रिविध महेश-मन्त्रों के साथ यहाँ पंचविध शक्ति-मन्त्रों का और गौरी बीज का भी उद्धार बताया गया है। इस पटल के अन्त में मन्त्रों एवं तत्त्वों के न्यास का क्रम प्रदर्शित है। साथ ही क्रिया को शरीर एवं मन्त्र को जीव बताकर कहा गया है कि क्रिया और मन्त्र के सहयोग से ही भगवान् शिव का सांनिध्य प्राप्त होता है।

षष्ठ पटल में सभी मन्त्रों के प्राणभूत प्रणव मन्त्र का स्वरूप प्रदर्शित है। प्रणव के साकल्य, शांभव, सौख्य, सावश्य और सायुज्य नामक पाँच भेदों की उत्पत्ति शिव के पाँच वक्त्रों (मुखों) से होती है। प्रथम प्रणव की पंचदेवात्मकता को स्पष्ट कर बाद में साकल्य आदि पंचविध प्रणवों का उद्धार-क्रम प्रदर्शित है और इनके स्वरूप को ऋषि, देवता और छन्द के विवरण के साथ स्पष्ट किया गया है। अन्त में प्रणव के सभी बीजों में शिवबीज हकार की प्रधानता प्रदर्शित है।

ब्रह्मभेद नामक **सप्तम** पटल में पंचब्रह्म का स्वरूप वर्णित है। **ब्रह्म** पद की व्युत्पत्ति को बताते हुए यहाँ कहा गया है कि पंचब्रह्म का ही पचीस तत्त्वों के रूप में विस्तार होता है। एक ही ब्रह्मतत्त्व मूर्तिब्रह्म, तत्त्वब्रह्म, भूतब्रह्म, पिण्डब्रह्म और कलाब्रह्म के नाम से पंचविध स्वरूप धारण कर लेता है। पंचब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते समय यहाँ पिण्डब्रह्म में सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान वक्त्रों का तथा कलाब्रह्म का निरूपण करते समय ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात नामक पंचब्रह्म मन्त्रों की कलाओं का विवरण दिया गया है। यहाँ ईशान की पाँच, तत्पुरुष की चार, अघोर की आठ, वामदेव की तेरह और सद्योजात की आठ— कुल अड़तीस कलाओं का परिचय दिया गया है। सिद्धान्तसारावली (२.१६-१७) में भी यह विषय चर्चित है। वहाँ इन ३८ कलाओं के न्यास की विधि भी प्रदर्शित है, जिससे आराधक का समस्त शरीर शिवमय बन जाता है।

पंचब्रह्म मन्त्रों की ३८ कलाओं का निरूपण करने के उपरान्त यहाँ इनकी ईशान, ईश्वर, ब्रह्मा, शिव और सदाशिव स्वरूपता, कर्म, कर्तृ आदि पंच सादाख्य रूपता, आत्मप्रासाद आदि पंचप्रासाद रूपता और पंचमहाभूतात्मकता प्रदर्शित है। पार्थिव आदि महाभूतों के पीत आदि वर्णों का भी निरूपण किया

गया है और अन्त में सद्योजात आदि का ध्यान भी प्रदर्शित है। इनके ध्यान से प्राप्त होने वाले फलों को बताकर यहाँ इनके सौम्य और रौद्र रूपों का, मूर्तामूर्त स्वरूपों का और तत्त्व-कला रूपता का पुनः निदर्शन कर पंचब्रह्म मन्त्रों की कलाओं के वर्ण, आयुध, शक्ति आदि का भी निरूपण किया गया है। अन्त में बताया गया है कि सकलीकरण की विधि को सम्पन्न करने के लिए, स्वयं शिवस्वरूप बन जाने के लिए साधक इन समस्त शक्तियों और मूर्ति, तत्त्व, भूत, पिण्ड और कलाओं के साथ पंचब्रह्म मन्त्रों का शिव की आराधना करते समय अपने शरीर में न्यास करे।

अष्टम अंगभेद पटल में अपनी पद्धति से षडंगों और इनके छत्तीस भेदों का निरूपण किया गया है। यहाँ शिवांग, भूतांग, कूटांग, विद्यांग, शक्त्यंग और सामान्यांग नाम के छः षडंगों की सूचना देकर क्रमशः इनके स्वरूप का निरूपण किया गया है। शिवांग का उद्धार करते हुए हृदय, शिरस्, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र नामक इसके छः भेद बताये गये हैं। षडंग के नाम से ये ही सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इसी क्रम से भूतांग, कूटांग और विद्यांगों का स्वरूप बताते हुए इनमें से प्रत्येक के छः छः भेद वर्णित हैं। विद्यांग के निरूपण के प्रसंग में यहाँ कवच और अस्त्र मन्त्र का उद्धार विस्तार से बताया गया है। आगे शक्त्यंग और सामान्यांग के छः छः बीजों का स्वरूप बताकर प्रतिज्ञात छत्तीस अंगों का निरूपण पूरा किया गया है। इसके बाद सभी के शुक्ल आदि वर्णों का परिचय देकर इनके सौम्य और रौद्र स्वरूपों का ध्यान वर्णित है। तब इनके यजन के प्रकार को बताते हुए केवल, ज्ञानज, योगज, भूतज और कामद नाम के पंचविध हृदय-मन्त्रों का उद्धार प्रदर्शित है। इनके वर्णों को और इनकी सहायता से किए जाने वाले यजन, स्थापन आदि कर्मों में इनके विनियोग को भी यहाँ दिखाया गया है। अन्त में पंचविध अस्त्र-मन्त्रों का स्वरूप चर्चित है। इस पटल में चर्चित विषय भी अन्यत्र देखने को नहीं मिलते।

नवम पटल में मुख्यतः मन्त्रमय लिंग की उद्धार-विधि प्रदर्शित है। गोमय से उपलिप्त भूमि पर सूत्रपात पद्धति से पूर्व से पश्चिम तक तथा दक्षिण से उत्तर तक सत्रह-सत्रह रेखाएँ खींची जाती हैं। इनके कारण एक-एक पंक्ति में सोलह-सोलह कोष्ठकों, कुछ मिलाकर २५६ कोष्ठकों का निर्माण होता है।

संलग्न चित्र में इन कोष्ठकों को और उनमें निर्मित लिंगपीठ के पट्टिका, कंज (पद्म), कण्ठ (वृत्त), अब्ज (पद्म), पट्टिका और आज्यप्रधारिका नामक छ: अंगों को तथा उनमें स्थापित वर्णों को देखा जा सकता है। इस प्रकार उद्धृत दिव्य लिंग में प्रथमत: हृदय आदि षडंग मन्त्रों का; अपने-अपने वर्णों से अलंकृत आधार आदि षट्चक्रों का; सूक्ष्म पंचाक्षर, स्थूल पंचाक्षर और षडक्षर मन्त्रों का और षडध्व का न्यास किया जाता है। इतना ही नहीं, इस दिव्य लिंग में कामिक आदि २८ सिद्धान्तागमों में वर्णित सभी मन्त्रों का भी न्यास किया जाता है।

विविध मन्त्रों के न्यास के साथ इस मन्त्रजात प्रकरण को पूरा कर आगे अतिबाल, सबाल, कौमार आदि मन्त्रों के परिगणन के साथ इनका स्वरूप भी यहाँ प्रदर्शित है। ब्राह्मण, क्षत्रिंय, वैश्य और शूद्र जाति के मन्त्रों का, स्त्री-पुरुष-नपुंसक मन्त्रों का और शुद्ध-मिश्र-संकीर्ण मन्त्रों का स्वरूप बताने के साथ मन्त्र-शरीर के मस्तक मुख आदि अवयवों का निरूपण करने के उपरान्त यहाँ मन्त्रवास (प्रकृति) और मन्त्रवाहक (विकृति) का स्वरूप भी स्पष्ट किया गया है। मन्त्रों के इस प्रकार के भेद भी अन्यत्र देखने को नहीं मिलते।

दशम कीलमन्त्र विसर्जन पटल में सकील मन्त्रों के विसर्जन (त्याग) और निष्कील मन्त्रों के परिग्रहण का विधान है। मन्त्रों से संबद्ध अन्य विषय भी यहाँ चर्चित है, किन्तु मुख्य विषय की चर्चा नहीं के बराबर है। आगे गुरु, लिंग, अक्षमाला, मन्त्र और भस्म— इन पाँच शिवमुद्राओं में शिव के समान ही भक्ति रखनी चाहिए, इनमें कभी किसी प्रकार की भेदबुद्धि नहीं रखनी चाहिए, इनता बता देने के बाद यहाँ शैवों के सामान्य, मिश्र, शुद्ध और वीर नामक चार भेदों का स्वरूप विस्तार से बताया गया है। प्रसंगवश आत्मार्थ और परार्थ नामक द्विविध पूजा का विधान है। आगे वीरशैवों के प्रसंग में सामान्य, विशेष और निराभार नामक तीन भेदों का स्वरूप भी निरूपित है। अन्त में वीरशैवों के सामान्य व्रतों का परिगणन करते हुए इनका उल्लंघन करने पर प्रायश्चित्त का स्वरूप बताया गया है। इस तरह से इस पटल में प्रधानत: चतुर्विध शैवों का स्वरूप ही वर्णित है, किन्तु सभी के लिए कीलित मन्त्रों के परित्याग का भी विधान है।

इसीके साथ दस पटल वाला यह ग्रन्थ पूरा होता है।

उपसंहार

ऊपर हमने ग्रन्थ का सारांश प्रस्तुत किया है। हम कह सकते हैं कि इस पूरे ग्रन्थ में शैवागमों में प्रतिपादित पाँच शुद्ध तत्त्वों का स्वरूप विस्तार से वर्णित है। प्रथम पटल में पंचविध शक्तितत्त्व के साथ शिव का, पंचविध सादाख्य (सदाशिव) तत्त्व का और पचीस भेद वाले महेश (ईश्वर) तत्त्व का निरूपण है और आगे के सभी पटलों में विविध रूपों में मन्त्र (विद्या) तत्त्व प्रपंचित है। इस तन्त्र की तुलना हम सूक्ष्मागम से कर सकते हैं। इसमें भी दस ही पटल हैं और प्रथम पटल में पंचविध शक्तितत्त्व के साथ शिव का और पंचविध सादाख्य तत्त्व का स्वरूप वर्णित है तथा द्वितीय पटल में महेश तत्त्व का शिव की पचीस लीलाओं के रूप में निरूपण है। यहाँ तृतीय और चतुर्थ पटल में शिव पंचाक्षर और षडक्षर मन्त्रों का स्वरूप अधिक विस्तार से वर्णित है। प्रणव के साकल्य आदि भेदों का निरूपण भी चतुर्थ पटल में ही है। अन्य तन्त्रों में भी इनका विवरण देखा जा सकता है।

यहाँ निरूपित ५१वर्णों का, चक्रोद्धार पद्धति का और त्रिविध वर्गों के उपभेदों का निरूपण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। त्रिविध वर्गों में विभक्त वर्णों के आधार पर प्रासाद, सौम्य और रौद्र मन्त्रों की यहाँ प्रदर्शित उद्धार-विधि भी अन्यत्र नहीं है। यहाँ प्रदर्शित चक्र को चित्र का आकार देने के लिए हमने पूना के लब्धप्रतिष्ठ, मण्डल-लेखन के विशेषज्ञ प्रो. पी.पी.आपटे जी से सहायता ली है। उनके द्वारा निर्मित चित्रों के आधार पर ही प्रस्तुत आगम की पद्धति से अक्षरों का और रंगों का विन्यास किया गया है।

चक्र के मध्य में स्थित कर्णिका-युक्त चतुर्दल कमल में क्रमशः हकार, बिन्दुॅं, ळकार, नाद ·।· और क्षकार नामक पाँच अक्षरों का विधान है। इनमें बिन्दु का आकार अर्धचन्द्र सहित बिन्दु से बनाया जाता है। बीजाक्षरों के निर्माण की यही विधि आगम-तन्त्रशास्त्र में वर्णित है। जहाँ किसी देवता के बीजाक्षर का विधान न मिलता हो, वहाँ मन्त्र के प्रथम अक्षर के साथ बिन्दु और अर्धचन्द्र का संयोजन कर बीजाक्षर बना लिया जाता है, जैसे गँ गणपतये नमः। नाद की स्थिति उन्मना पर्यन्त मानी गई है और योगिनीहृदय (१.२८-३३) में बिन्दु से लेकर उन्मना पर्यन्त मात्राओं का स्वरूप निरूपित है। भास्करराय के ग्रन्थ वरिवस्यारहस्य के अड्यार (मद्रास) संस्करण में संयोजित चित्र में इनका आकार देखा जा सकता है। प्रस्तुत चित्र में इसीके आधार पर नाद के प्रतीक

में रूप में इस आकार ·ı· को संयोजित किया जा सकता है। इस प्रकार वर्णों की इस तन्त्र में स्वीकृत ५१ संख्या में बिन्दु (◡) और नाद ·ı· के कारण कोई वृद्धि नहीं होने पाती।

प्रासाद मन्त्र की विस्तृत चर्चा सिद्धान्तसारावलि (क्रिया. ६-१२ श्लो., पृ. ७९-१२०) में पंचब्रह्म मन्त्रों से निर्मित ३८ कलाओं के न्यास का प्रकार भी प्रदर्शित है। नवम पटल में वर्णित पट्टिका, पद्म आदि छ: अवयवों वाले ज्योतिर्मय लिंग का स्वरूप भी प्रो. प्रभाकर आपटे जी ने चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया है। यहाँ कन्नड़ लिपि में कर्णाटक के हुबली निवासी शंकरप्पा अच्चप्पा टोप्पगि के द्वारा १९१४ ई. में मैसूर से प्रकाशित 'तन्त्रसंग्रह' नामक ग्रन्थ से उसका परिष्कृत स्वरूप लिया गया है। इनकी सहायता से इस विषय को समझा जा सकता है। सिद्धान्तसारावलि (पृ. ३२०-३३७) में भी लिंगतत्त्व के विविध स्वरूपों का वर्णन मिलता है। लिंग की ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकता का विवरण पठनीय और मननीय है (पृ. ३२३)।

अष्टम पटल के प्रतिपाद्य विषयों की चर्चा हम यथास्थान कर चुके हैं। इसी प्रकार दशम पटल में पहले चतुर्विध शैवों का और बाद में वीरशैवों के त्रिविध भेदों का परिचय दिया गया है। चन्द्रज्ञानागम आदि में सप्तविध या अष्टविध शैव वर्णित हैं। पारमेश्वरागम में शैवों के अतिरिक्त सौर, गाणपत्य आदि मतों का भी विवरण मिलता है। पारमेश्वरागम की प्रस्तावना (पृ. VI-VII) से (मूल एवं टिप्पणी) इनका परिचय मिल सकता है।

मैसूर से संस्कृत टीका और कन्नड़ अनुवाद के साथ अभी हाल में इस तन्त्र के दो संस्करण हुए हैं। वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित 'तन्त्रसंग्रह' के द्वितीय भाग में समाविष्ट इस ग्रन्थ को मैसूर संस्करण में प्रदत्त पाठभेदों की सहायता से परिष्कृत कर यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इन दोनों प्रतिष्ठानों के प्रति हम अपना आभार प्रकट करते हैं। वर्णचक्र एवं ज्योतिर्मय लिंग के चित्रों को हमारे अनुरोध पर तैयार कर प्रो. प्रभाकर आपटेजी ने इस संस्करण को सर्वांगपूर्ण बनाया है। इसी तरह से 'तन्त्रसंग्रह' के सम्पादक श्री शंकरप्पा अच्चप्पा टोप्पगि के प्रति भी हम आभारी हैं। इन दोनों ही चित्रों को यथामति परिष्कृत कर हमने यहाँ प्रस्तुत किया है। इनकी सर्वांगपूर्णता के लिए पारम्परिक विद्वानों के सुझाव अपेक्षित हैं। इसी निवेदन के साथ—

गणेश चतुर्थी, विद्वद्वंशवद
संवत् २०६१ **पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी**

विषय-क्रमः

***

वातुलशुद्धाख्यं तन्त्रम्

प्रथमः पटलः

कैलासशिखरे रम्ये नानारत्नोपशोभिते ।
नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ।।१।।

तत्र सिंहासनासीनं श्रीकण्ठं त्रिदशेश्वरम् ।
प्रणम्य चरणौ तस्य स्कन्दो वचनमब्रवीत् ।।२।।

स्कन्द उवाच

देवदेव जगन्नाथ सर्वज्ञ त्रिपुरान्तक ।
स्थित्युत्पत्तिलयेशान प्रणतार्तिहर प्रभो ।।३।।

सर्वलोकहितार्थाय योगिनां रक्षणाय च ।
मन्त्रं तन्त्रं पुरा देव त्वया प्रोक्तं तु विस्तरात् ।।४।।

पुंसामनुग्रहार्थाय ज्ञानिनां मुक्तिकारणम् ।
शिवज्ञानं परं गुह्यं संक्षेपाद् वद मे प्रभो ।।५।।

नाना प्रकार के मणि-माणिक्य आदि विविध रत्नों से सुशोभित, नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं से परिवेष्टित, नाना प्रकार के पुष्पों से अलंकृत, सभी के मन को लुभा लेने वाले, कैलास पर्वत के शिखर पर स्थित सिंहासन पर विराजमान, सभी देवताओं के स्वामी भगवान् श्रीकण्ठ के चरणों में प्रणाम कर स्कन्द देव प्रश्न करते हैं।।१-२।।

स्कन्द का प्रश्न

हे सभी देवताओं के स्वामी ! इस जगत् के अधिपति ! सब कुछ जानने वाले, त्रिपुर का नाश करने वाले, उत्पत्ति-स्थिति-संहार कार्य में सदा लगे रहने वाले, विनम्र मानवों की पीड़ा को दूर करने वाले, मेरे आराध्यदेव ! महादेव ! सभी प्राणियों के कल्याण के लिये तथा योगिजनों की रक्षा के लिये मैं चाहता हूँ कि आप मन्त्रशास्त्र और तन्त्रशास्त्र के उस स्वरूप को मुझे समझावें, जिसका उपदेश पुराकाल में आपने विस्तार से किया था। हे प्रभु ! समस्त मानवों के कल्याण के लिये, ज्ञानी जनों को मुक्ति देने वाले, उस परम गोपनीय शिवज्ञान का आप मुझे संक्षेप में उपदेश कीजिये।।३-५।।

ईश्वर उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि यत् त्वया परिचोदितम् ।
तत् सर्वं हि समासेन श्रूयतामिह षण्मुख ।।६।।

ग्रन्थमहत्त्वम्

साधकानां हितार्थाय भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
वातुलाख्ये महातन्त्रे दध्नो घृतमिवोद्धृतम् ।।७।।
सारात्सारं समुद्धृत्य शुद्धाख्यं तन्त्रमुत्तमम् ।
सहस्त्रग्रन्थसंयुक्तं सर्वज्ञानसमुच्चयम् ।।८।।
गुह्याद् गुह्यतमं तन्त्रं सर्वशास्त्रसमुद्धृतम् ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं चैव सारात्सारं महोदयम् ।।९।।
अप्रकाश्यमिदं तन्त्रं रहस्यमतिदुर्लभम् ।
शिवज्ञानं महासेन संक्षेपाद् वक्ष्यतेऽधुना ।।१०।।

पटलभेदनिरूपणम्

प्रथमस्तत्त्वभेदश्च द्वितीयो वर्णभेदकः ।
तृतीयश्चक्रभेदश्च चतुर्थो वर्गभेदकः ।।११।।

ईश्वर का उत्तर

हे छः मुख वाले कुमार स्कन्द ! तुमने मेरे सामने जो प्रश्न उपस्थित किया है, अब मैं उसका समाधान प्रस्तुत कर रहा हूँ। संक्षेप में बताये जा रहे इस विषय को तुम सावधानी से सुनो।।६।।

साधकों के कल्याण के लिये, भोग और मोक्ष को देने वाले इस ज्ञान का, दही से निकाले गये नवनीत के समान वातुल नाम के महामन्त्र में से उसके सारतम भाग का उद्धार कर इस अति-उत्तम वातुलशुद्ध नामक तन्त्र का उपदेश कर रहा हूँ। एक हजार श्लोक प्रमाण के इस ग्रन्थ में समस्त शास्त्र के ज्ञान को संगृहीत कर दिया गया है।।७-८।। समस्त शिवागमों के सार के रूप में समुद्धृत यह तन्त्र अतीव गोपनीय है। सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम विषयों के सारतम भाग को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। यह उपदेश मानवों के अभ्युदय और मोक्ष के रूप में महान् उत्कर्ष को देने वाला है।।९।। हे महासेन ! इस तन्त्र में अतिदुर्लभ रहस्य को मैं तुम्हारे सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ, अतः अनधिकारी व्यक्ति के सामने इसे प्रकाशित नहीं करना चाहिये। इस चेतावनी के साथ अब मैं इस शिवज्ञान को संक्षेप में बता रहा हूँ।।१०।।

प्रथम में तत्त्वभेद, द्वितीय में वर्णभेद, तृतीय में चक्रभेद, चतुर्थ में वर्गभेद, पंचम में मन्त्रभेद, षष्ठ में प्रणवभेद, सप्तम में ब्रह्मभेद, अष्टम में अंगभेद, नवम में मन्त्रसमुदाय

पञ्चमो मन्त्रभेदस्तु षष्ठः प्रणवभेदकः ।
सप्तमो ब्रह्मभेदश्च अङ्गभेदस्तु चाष्टमः ।।१२।।

नवमं मन्त्रजातं तु दशमं कीलकं तथा ।
एते वै दशभेदास्तु कीर्तिताश्च क्रमेण वै ।।१३।।

त्रिविधं तत्त्वम्

एतेषामेव पूर्वं तु तत्त्वभेदं वदाम्यहम् ।
तत्त्वं तु त्रिविधं ज्ञेयं तस्य भेदं शृणुष्व हि ।।१४।।

शिवः सदाशिवश्चैव महेशश्च त्रिधा स्मृतम् ।
शिवतत्त्वं महासेन निष्कलं त्विति कीर्तितम् ।।१५।।

सकलो निष्कलश्चैव सदाशिव इहोच्यते ।
महेशं सकलं विद्यात् त्रिविधास्ते भवन्ति वै ।।१६।।

शिवमेकं विजानीयात् सादाख्यं पञ्चधा भवेत् ।
महेशस्तु महासेन पञ्चविंशतिभेदकः ।।१७।।

एतेषां तत्त्वसंयुक्तमेकत्रिंशदिति स्मृतम् ।

शिवतत्त्वलक्षणम्

शिवस्य लक्षणं वक्ष्ये समासाच्छृणु षण्मुख ।।१८।।

और दशम में कीलक — इस तरह से ये दस विषय इस ग्रन्थ के दस पटलों में क्रमशः वर्णित हैं।।११-१३।।

इनमें से सबसे पहले मैं तत्त्वभेद की चर्चा करता हूँ। यह तत्त्व तीन प्रकार का है। उसके भेदों को सुनो।।१४।। शिव, सदाशिव और महेश — ये ही तीन तत्त्व हैं। हे महासेन ! इनमें से शिवतत्त्व निष्कल कहा गया है। सदाशिव तत्त्व सकल-निष्कल कहलाता है और महेश सकल रूप में जाना जाता है। इस तरह से एक ही तत्त्व सकल आदि के भेद से त्रिविध हो जाता है।।१५-१६।।

इनमें से शिव एक ही तत्त्व है। सदाशिव के पाँच भेद होते हैं और हे महासेन ! महेश के पचीस भेद हैं। इन सबको मिलाने पर तत्त्वों की संख्या ३१ हो जाती है। हे षण्मुख ! सबसे पहले मैं संक्षेप में शिव का स्वरूप बताऊँगा। उसे तुम पूरी सावधानी से सुनो।।१७-१८।। यह शिवतत्त्व शिव, परात्पर, सूक्ष्म, नित्य, सर्वगत, अव्यय, अनिन्दित, अनौपम्य,

शिवं परात्परं सूक्ष्मं नित्यं सर्वगमव्ययम् ।
अनिन्दितमनौपम्यमप्रमेयमनामयम् ॥१९॥
शुद्धत्वाच्छिवमुद्दिष्टं परादूर्ध्वं परात्परम् ।
व्योमातीतं च सूक्ष्मं हि नित्यं कारणशून्यतः ॥२०॥
व्याप्त्या सर्वगतं प्रोक्तमक्षीणमव्ययं भवेत् ।
अमलं त्वनिन्दितं ज्ञेयमसादृश्यादनौपमम् ॥२१॥
प्रमाणाद्यतिरिक्तत्वादप्रमेयमिति स्मृतम् ।
निर्गुणत्वाद् विशेषेण ह्यनामयमिति स्मृतम् ॥२२॥
इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तं शिवरूपमिहोच्यते ।
सृष्ट्यर्थं सर्वतत्त्वानां लोकस्योत्पत्तिकारणम् ॥२३॥
योगिनामुपकाराय स्वेच्छया चिन्तितः शिवः ।

शक्तिपञ्चकम्

तच्छिवे तु परा शक्तिः सहस्रांशेन जायते ॥२४॥
तच्छक्तेस्तु सहस्रांशादादिशक्तिसमुद्भवः ।
आदिशक्तिसहस्रांशादिच्छाशक्तिसमुद्भवः ॥२५॥

अप्रमेय और अनामय है॥१९॥ सर्वतः परिशुद्ध होने से इस तत्त्व को शिव कहा जाता है। पर तत्त्व से भी ऊपर इसकी स्थिति रहने से यह परात्पर है। शून्य से भी ऊपर इनकी स्थिति रहने से इनको सूक्ष्म कहा गया है। सभी कारणों का कारण यह शिव नित्य विशेषण से सुशोभित है। सर्वत्र व्याप्त होने से ये सर्वगत हैं। सभी प्रकार के क्षय (नाश) से अतीत होने से ये अव्यय कहलाते हैं। अत्यन्त अमल (निर्मल) होने से ये अनिन्दित के रूप में जाने जाते हैं। इनके समान कोई दूसरी वस्तु नहीं है, अतः इनको अनौपम्य, उपमा से रहित माना जाता है। प्रमाण-प्रमेय आदि व्यवहारों से इनकी स्थिति ऊपर है, अर्थात् इनके विषय में इनकी प्रवृत्ति नहीं होती, अतः ये अप्रमेय माने गये हैं। विशेष रूप से सभी गुणों से अतीत होने से अनामय, विकारातीत माने गये हैं॥२०-२२॥

शिव का स्वरूप इन सभी लक्षणों से संपन्न है। इस शिवतत्त्व से ही अन्य सभी तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। यही सभी लोकों की उत्पत्ति का कारण है॥२३॥

योगिजनों के उपकार के लिये भगवान् शिव अपनी इच्छा से ही इस स्वरूप को धारण करते हैं। इनके हजारवें भाग से पराशक्ति का प्रादुर्भाव होता है। परा शक्ति के हजारवें भाग से आदि शक्ति की, आदि शक्ति के हजारवें भाग से इच्छा शक्ति की, इच्छा शक्ति के हजारवें भाग से ज्ञान शक्ति की और ज्ञान शक्ति के हजारवें भाग से क्रिया शक्ति की अभिव्यक्ति

इच्छाशक्तिसहस्रांशाद् ज्ञानशक्तिसमुद्भवः ।
ज्ञानशक्तिसहस्रांशात् क्रियाशक्तिसमुद्भवः ।। २६ ।।

एता वै शक्तयः पञ्च निष्कलाश्चेति कीर्तिताः ।
शिवसृष्टिरियं प्रोक्ता शक्तीनां सृष्टिरुच्यते ।। २७ ।।

सादाख्यं तत्त्वम्

योगिनां च यतीनां च ज्ञानिनां मन्त्रिणां तथा ।
ध्यानपूजानिमित्ताय निष्कलं सकलं भवेत् ।। २८ ।।

तद्रूपं हि समासेन सादाख्यमिति कीर्तितम् ।
सादाख्यं पञ्चधा प्रोक्तं तेषां लक्षणमुच्यते ।। २९ ।।

पराशक्त्यादिशक्त्योश्च सादाख्यस्य समुद्भवः ।
प्रथमं शिवसादाख्यममूर्तं तु द्वितीयकम् ।। ३० ।।

तृतीयं मूर्तसादाख्यं चतुर्थं कर्तृनामकम् ।
पञ्चमं कर्मसादाख्यमुक्तं सादाख्यपञ्चकम् ।। ३१ ।।

तत्त्वपञ्चकम्

सदाशिवस्तथेशश्च ब्रह्मेशश्चेश्वरस्तथा ।
ईशानश्चेति पञ्चैते तत्त्वभेदाः प्रकीर्तिताः ।। ३२ ।।

होती है।।२४-२६।।

भगवान् शिव में अभिव्यक्त हुई ये पाँच शक्तियाँ निष्कल कहलाती हैं। शिवसृष्टि के नाम से ये प्रसिद्ध हैं। अब शक्ति-सृष्टि का वर्णन किया जा रहा है।।२७।।

योगियों, यतियों, ज्ञानियों और मन्त्रशास्त्र के ज्ञाताओं के ध्यान और पूजा, अर्थात् आन्तर और बाह्य उपासना की सिद्धि के लिये निष्कल तत्त्व सकल स्वरूप धारण कर लेता है। यह सकल स्वरूप ही सादाख्य तत्त्व कहलाता है। शास्त्रों में सादाख्य तत्त्व के पाँच भेद बताये गये हैं। उनके लक्षण अब सुनो।।२८-२९।।

पराशक्ति और आदिशक्ति से सादाख्य तत्त्व की उत्पत्ति होती है। प्रथम शिवसादाख्य, द्वितीय अमूर्तसादाख्य, तृतीय मूर्तसादाख्य, चतुर्थ कर्तृसादाख्य, पंचम कर्मसादाख्य — इस तरह से पंचविध सादाख्य तत्त्व शास्त्रों में वर्णित हैं।।३०-३१।।

सदाशिव, ईश, ब्रह्मेश, ईश्वर और ईशान — ये इन पाँच तत्त्वों के पर्याय नाम हैं। इनमें शिवसादाख्य को सदाशिव, अमूर्तसादाख्य को ईश, मूर्तसादाख्य को ब्रह्मेश, कर्तृसादाख्य को ईश और कर्मसादाख्य को ईशान कहा जाता है। इस तरह से सादाख्य

शिवं सदाशिवो ज्ञेयममूर्तं चेश उच्यते ।
मूर्तं ब्रह्मेति विज्ञेयं कर्तृ चैवेश्वरः स्मृतम् ।।३३।।
कर्मेशान इति प्रोक्तमित्येवं द्विविधं स्मृतम् ।

त्रिविधं रूपम्

परात्परतरं चैव सूक्ष्मतः सूक्ष्ममेव च ।।३४।।
स्थूलात् स्थूलं क्रमेणैव शिवादिः परिलक्ष्यते ।
तदीयं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं ततः परम् ।।३५।।
अस्मदाद्यमरैर्दृश्यं स्थूलं सूक्ष्मं च योगिभिः ।
ततः परं तु यन्नित्यं ज्ञानमानन्दमव्ययम् ।।३६।।
तन्निष्ठैस्तत्परैर्भक्तैर्दृश्यं तद्रूपमास्तिकैः ।
एतेषु पञ्चतत्त्वेषु विशेषमधुनोच्यते ।।३७।।

तत्त्व-मूर्ति-भावलक्षणम्

तत्त्वं मूर्तिश्च भावश्च त्रिभेदं विद्यते क्रमात् ।
शिवश्च तत्त्वमित्युक्तो मूर्तिश्चैव सदाशिवः ।।३८।।
तयोर्योगेन यद् रूपं तद्रूपं भाव उच्यते ।
भावः सादाख्यमित्युक्त इत्येवं परिकल्पितम् ।।३९।।

तत्त्व के पंचविध स्वरूपों को सदाशिव आदि नामों से जाना जाता है। पर से परतर, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तथा स्थूल से स्थूलतर इनका स्वरूप है। इस क्रम में तत्त्वों के तीन स्वरूप स्थूल, सूक्ष्म और पर के नाम से जाने जाते हैं।।३२-३५।।

इनमें से स्थूल स्वरूप को मानव भी देख सकते हैं। सूक्ष्म स्वरूप को देखने में योगी ही समर्थ हैं। सूक्ष्म रूप से आगे विद्यमान पर रूप नित्य ज्ञानानन्द स्वरूप अव्यय तत्त्व से अभिन्न है। इस पर रूप का साक्षात्कार भगवत्परायण श्रेष्ठ भक्तजन ही कर सकते हैं, क्योंकि आस्तिक्य बुद्धि से संपन्न ये भक्तजन पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ इस पर स्वरूप का साक्षात्कार करने में लग जाते हैं। पाँच रूपों में विभक्त इस द्विविध नामावली वाले तत्त्वों की विशेषता का अब वर्णन किया जा रहा है।।३५-३७।।

ऊपर वर्णित तीन स्वरूपों की तत्त्व, मूर्ति और भाव के रूप में भी विशेषता बताई जाती है। तत्त्व के रूप में शिव की, सदाशिव के रूप में मूर्ति की और इन दोनों के मिलन से भाव की स्थिति बनती है। सादाख्य तत्त्व की ही यहाँ भाव के रूप में कल्पना की गई है।।३८-३९।।

सादाख्य तत्त्व में निरन्तर शिवभाव की स्थिति रहने से इसे यह नाम दिया गया है।

सन्ततं शिवभावत्वात् सादाख्यमिति कीर्तितम् ।
निष्कलं तत्त्वमित्युक्तं सकलं मूर्तिरुच्यते ।।४०।।

निष्कलं सकलं चैव प्रभाव इति कीर्तितम् ।
देही निष्कलमित्युक्तो देहः सकलमीरितः ।।४१।।

देहिदेहसुसंबन्धाद् भावरूपमिति स्मृतम् ।
सर्वेषां ध्यानपूजार्थं निष्कलं सकलं भवेत् ।।४२।।

एवं ज्ञात्वा विशेषेण सर्वं कर्म समाचरेत् ।
पञ्चसादाख्यतत्त्वानामुद्भवं हि पृथक् पृथक् ।।४३।।

तेषां रूपं च वर्णं च समासाच्छृणु षण्मुख ।

१. शिवसादाख्यलक्षणम्

शान्त्यतीता पराशक्तिस्तस्याः पर्यायवाचकः ।।४४।।

पराशक्तेर्दशांशेन शिवसादाख्यसंभवः ।
पराशक्त्युद्भवत्वाच्च शुद्धत्वाच्छिवमीरितम् ।।४५।।

तद्रूपं सूक्ष्मरूपेण ज्योतीरूपमिति स्मृतम् ।
विद्युद्रूपमिवाकाशे प्रत्यक्षं सर्वतोमुखम् ।।४६।।

इसका निष्कल स्वरूप तत्त्व और सकल स्वरूप मूर्ति कहलाता है।।४०।।

इस तरह से भाव में सकल और निष्कल दोनों ही अवस्थाएँ विद्यमान रहती हैं। देही के रूप में निष्कल और देह के रूप में यह सकल कहलाता है। देही और देह का परस्पर संबन्ध ही भाव कहा जाता है। सभी प्राणियों को अपने इष्टदेव के ध्यान और पूजन में सुविधा हो, इसके लिये निष्कल तत्त्व ही सकल स्वरूप धारण कर लेता है।।४१-४२।।

पंचविध सादाख्य तत्त्व की पृथक् पृथक् उत्पत्ति-प्रक्रिया को समझ कर ही साधक को सभी कर्मों का विशेष रूप से आचरण करना चाहिये।।४३।।

हे षण्मुख ! अब मैं उनके स्वरूप और वर्ण का संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ। परा आदि पाँच शक्तियों की चर्चा पहले (पृ. ४) हो चुकी है। इनमें से परा शक्ति शान्त्यतीता कहलाती है। इस परा शक्ति के दशांश से शिवसादाख्य तत्त्व की उत्पत्ति होती है। परा शक्ति से इसकी उत्पत्ति होती है, अतः अत्यन्त परिशुद्ध यह तत्त्व शिव के नाम से शास्त्रों में वर्णित है।।४४-४५।।

यह शिव तत्त्व सूक्ष्म रूप एवं ज्योतिःस्वरूप है। इसीलिये आकाश में विद्युत् के प्रकाश के समान सर्वत्र प्रत्यक्ष रूप से भासित होता रहता है। शिव तत्त्व के नाम से यह जाना जाता है, समस्त तत्त्वों का यह आलय है, अर्थात् सभी तत्त्व इसमें छिपे हुए हैं।

शिवतत्त्वमिदं प्रोक्तं तत्त्वानामखिलालयम् ।
शिवसादाख्यमित्युक्तममूर्तं तु ततः शृणु ।।४७।।

२. अमूर्तसादाख्यलक्षणम्

शान्तिरेवादिशक्तिश्च तस्याः पर्यायवाचकः ।
आदिशक्तेर्दशांशेन ह्यमूर्तस्य समुद्भवः ।।४८।।

आदिशक्तेरमूर्तत्वादमूर्तं चेति कीर्तितम् ।
अमूर्तत्वात् कलाहीनं तद्रूपं लिङ्गवद् भवेत् ।।४९।।

सूर्यकोटिप्रतीकाशं ज्योतिस्तम्भाकृति स्थितम् ।
तस्याभ्यन्तर्गता मूर्तिरमूर्तत्वादगोचरा ।।५०।।

एतद्वै दिव्यलिङ्गं तु मूलस्तम्भ इहोच्यते ।
लिङ्गात् सर्वं समुत्पन्नं लयं तस्मिन् प्रकीर्तितम् ।।५१।।

सृष्टिसंहारमेवोक्तं लिङ्गनाम्ना त्विहोच्यते ।
अमूर्तमेवमाख्यातं समूर्तं तु ततः शृणु ।।५२।।

मूर्तसादाख्यलक्षणम्

इच्छाशक्तिश्च विद्या च तस्याः पर्यायवाचकः ।
तच्छक्तेस्तु दशांशेन मूर्तसादाख्यसंभवः ।।५३।।

इस प्रकार यहाँ प्रथम शिवसादाख्य तत्त्व का स्वरूप बताया गया है। अब तुम अमूर्तसादाख्य नामक द्वितीय तत्त्व के स्वरूप को सुनो।।४६-४७।।

आदिशक्ति का ही नाम शान्ति है, अर्थात् आदिशक्ति को ही शास्त्रों में शान्ति के नाम से जाना जाता है। इस आदिशक्ति के दशांश से अमूर्तसादाख्य की उत्पत्ति मानी गई है। आदिशक्ति अमूर्त है, अत: उससे उत्पन्न हुआ यह तत्त्व अमूर्तसादाख्य कहलाता है। अमूर्त होने से यह कला से रहित है, अत: लिंगतत्त्व के समान ही इसका भी रूप है। करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान ज्योतिस्तंभ के समान इसका आकार है। इस ज्योतिस्तंभ के भीतर विद्यमान मूर्ति ही अमूर्तसादाख्य के नाम से प्रसिद्ध है। दिव्य लिंग और मूल ज्योतिस्तंभ के नाम से प्रसिद्ध इस लिंगतत्त्व से ही सबकी उत्पत्ति होती है और उसीमें सब कुछ लीन भी हो जाता है। यह सृष्टि-संहार की प्रक्रिया जहाँ होती है, उसीको यहाँ लिंगतत्त्व कहा गया है। इस तरह से यहाँ अमूर्तसादाख्य तत्त्व का निरूपण किया गया। अब मूर्तसादाख्य तत्त्व का वर्णन किया जा रहा है।।४८-५२।।

इच्छाशक्ति को ही विद्या के नाम से भी जाना जाता है। इस शक्ति के दशांश से मूर्तसादाख्य की उत्पत्ति होती है। इच्छाशक्ति के गुणों के कारण इसको मूर्त कहा जाता

इच्छाशक्तेर्गुणत्वाच्च तस्मान्मूर्तमुदाहृतम् ।
मूर्तत्वाच्च कलायुक्तं रूपं चेति प्रकीर्तितम् ।।५४।।

ज्वालाग्निसदृशप्रख्या दिव्यलिङ्गाकृतिर्भवेत् ।
तस्यार्धार्धैकभागे तु चैकवक्त्रसमन्वितम् ।।५५।।

त्रिणेत्रं चारुवदनं सर्वावयवसंयुतम् ।
कृष्णापरशुहस्तं च वराभयचतुर्भुजम् ।।५६।।

एवं लक्षणसंयुक्तं लिङ्गं मूर्तमुदाहृतम् ।
एवमेकाननोपेता दिव्यलिङ्गाकृतिर्भवेत् ।।५७।।

मूर्तसादाख्यमित्युक्तं कर्तृसादाख्यमुच्यते ।

कर्तृसादाख्यलक्षणम्

ज्ञानं चैव प्रतिष्ठा च तस्याः पर्यायवाचकः ।।५८।।

ज्ञानशक्तिदशांशेन कर्तृसादाख्यसंभवः ।
ज्ञानकर्तृस्वभावत्वात् कर्तृनामेति कीर्तितम् ।।५९।।

ज्ञानं हि शुद्धभावत्वात् स्फटिकाभासमुच्यते ।
दिव्यलिङ्गं महास्थूलं महादीर्घतयान्वितम् ।।६०।।

तस्य मध्ये स्थिता मूर्तिरीश्वरः सर्वकारणम् ।
चतुर्मूर्धं चतुर्वक्त्रं नेत्रद्वादशसंयुतम् ।।६१।।

है। मूर्त होने के कारण ही यह कला और रूप से संयुक्त माना गया है। अग्नि की ज्वाला के समान प्रकाशमान दिव्य लिंग का सा इसका आकार माना गया है। इसके चौथाई भाग में तीन नेत्र और एक मुख वाला मूर्तसादाख्य विराजित है। इसका सारा शरीर सुन्दर अवयवों से सुशोभित है। इसकी चार भुजाएँ मृगी, परशु, वर और अभय मुद्राओं से सुशोभित हैं। इन लक्षणों से संयुक्त लिंग मूर्त कहलाता है। एक मुख से सुशोभित दिव्य लिंग की सी आकृति वाला यह तत्त्व मूर्तसादाख्य कहलाता है। अब कर्तृसादाख्य का लक्षण बताया जा रहा है।।५३-५८।।

ज्ञानशक्ति और प्रतिष्ठा कला — ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। ज्ञानशक्ति के दशांश से कर्तृसादाख्य की उत्पत्ति होती है। ज्ञानशक्ति का अधिकरण होने से इसको कर्तृसादाख्य नाम दिया गया है। ज्ञान शुद्ध प्रकाशस्वभाव है, अतः शुद्ध स्फटिक के समान यह भासित होता है। यह दिव्य लिंग महास्थूल और महादीर्घ आकृति वाला है। इसके मध्य में समस्त पदार्थों की कारणभूत ईश्वर की मूर्ति विराजमान रहती है। चार सिर, चार मुख और बारह

चतुरास्यं चतुर्वर्णं वसुश्रोत्रसमन्वितम् ।
अष्टहस्तं द्विपादं च सर्वलक्षणसंयुतम् ।।६२।।

शूलं परशुखड्गं च त्वभयं दक्षिणे करे ।
पाशं नागं च घण्टां च वरदं वामहस्तके ।।६३।।

सर्वावयवसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
एवं तमीश्वरं विद्यात् कर्तृसादाख्यलिङ्गकम् ।।६४।।

कर्तृसादाख्यमित्युक्तं कर्मसादाख्यमुच्यते ।

कर्मसादाख्यलक्षणम्

निवृत्तिः स्यात् क्रियाशक्तिस्तस्याः पर्यायवाचकः ।।६५।।

क्रियाशक्तिदशांशेन कर्मसादाख्यसंभवः ।
क्रिया कर्मेति विज्ञेया तस्मात् कर्मेति नामतः ।।६६।।

लिङ्गपीठप्रकारेण कर्मसादाख्यलक्षणम् ।
नादो लिङ्गमिति ज्ञेयो बिन्दुः पीठमुदाहृतः ।।६७।।

नादबिन्दुयुतं रूपं लिङ्गाकारमिहोच्यते ।
चत्वारि कर्तृरूपाणि केवलं नाद उच्यते ।।६८।।

लिङ्गं शिव इति ज्ञेयः पीठं शक्तिरुदाहृता ।
योनिलिङ्गप्रकारेण जगत्सृष्ट्यर्थकारणम् ।।६९।।

नेत्रों से यह सुशोभित है। इसके चार मुख चार वर्णों वाले हैं। आठ कान, आठ हाथ और दो पैरों से सुशोभित इनका शरीर सभी लक्षणों से संपन्न है। दक्षिण भाग के चार हाथ शूल, परशु, खड्ग और अभय मुद्रा से तथा वाम भाग के चार हाथ पाश, नाग, घण्टा और वरद मुद्रा से सुशोभित हैं। सभी शोभन अवयवों से, सभी प्रकार के आभरणों (गहनों) से सुशोभित यह ईश्वर लिंग कर्तृसादाख्य के नाम से प्रसिद्ध है॥५८-६४॥

कर्तृसादाख्य के वर्णन के बाद अब कर्मसादाख्य का परिचय दिया जा रहा है। क्रियाशक्ति और निवृत्ति कला — ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। क्रियाशक्ति के दशांश से कर्मसादाख्य की उत्पत्ति होती है। क्रिया को ही कर्म कहा गया है। इसलिये क्रिया- शक्ति से उत्पन्न यह तत्त्व कर्मसादाख्य कहलाता है। लिंग और पीठ के रूप में कर्मसादाख्य की पहचान होती है। नाद को लिंग और बिन्दु को पीठ कहा जाता है। बिन्दु और नाद से संयुक्त यह स्वरूप लिंगतत्त्व कहलाता है। ऊपर वर्णित कर्तृसादाख्य पर्यन्त चार तत्त्व केवल नादमय हैं। लिंग को शिव और पीठ को शक्ति माना गया है। योनि और लिंग के रूप में

तथा संयोगभावस्य तत्त्वं कर्मेत्युदाहृतम् ।
बिन्दुमध्यगतो नादो नादमध्ये तु मूर्तयः ।।७०।।

मूर्तिमध्यगतं तत्त्वं तत्त्वमध्यगतः शिवः ।
शिवमध्यगतं नृत्तं नृत्तमध्ये तु शान्तकम् ।।७१।।

अतीतं शान्तमध्ये तु शान्त्यतीतं परात्परम् ।
एवं तत्त्वमयं लिङ्गं सर्वतत्त्वालयं विदुः ।।७२।।

लिङ्गेन जायते तत्त्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
तस्माल्लिङ्गं विशेषेण कर्मरूपमुदाहृतम् ।।७३।।

कर्मोदये तु सृष्टिः स्यात् कर्मान्ते संहृतिर्भवेत् ।
एतत् कर्मस्वरूपं तु सृष्टिस्थितिलयावहम् ।।७४।।

पञ्चसादाख्यानां परस्पराश्रयत्वम्

पञ्चसादाख्ययोगेन कर्मसादाख्यमुच्यते ।
शिवसादं विशेषेण शिवरूपं समाश्रितम् ।।७५।।

अमूर्तं तु महासेन शिवसादाख्यमाश्रितम् ।
मूर्तरूपं विशेषेण त्वमूर्तादिसमाश्रितम् ।।७६।।

नाद और बिन्दु का सामरस्य ही जगत् की सृष्टि का कारण माना गया है। यह संयोग कर्मरूप है, कर्मसादाख्य का यह व्यापार है। नाद की स्थिति बिन्दु के मध्य में मानी गई है। उस नाद के मध्य में मूर्ति विद्यमान है। मूर्ति के मध्य में तत्त्व की और तत्त्व के मध्य में शिव की स्थिति मानी गई है। शिव के मध्य में नृत्त की, नृत्त के मध्य में शान्त की और शान्त के मध्य में शान्त्यतीत परात्पर तत्त्व की स्थिति है। इस तरह से यह तत्त्वमय लिंग सभी तत्त्वों का आश्रय-स्थान है। स्थावर-जंगमात्मक समस्त जगत् की उत्पत्ति लिंग से ही होती है। इसलिये लिंगतत्त्व को ही विशेष रूप से कर्मसादाख्य कहा जाता है। कर्म के उदय के साथ सृष्टि का आरंभ होता है और कर्म का विराम हो जाने पर संहार हो जाता है। यह कर्मसादाख्य तत्त्व ही सृष्टि, स्थिति और संहार का कारण है।।६५-७४।।

पंचविध सादाख्य तत्त्व की परस्पर अनुस्यूतता के आधार पर अब कर्मसादाख्य का स्वरूप बताया जा रहा है। शिवसादाख्य तत्त्व विशेष रूप से शिव तत्त्व पर आश्रित है। हे महासेन ! अमूर्तसादाख्य शिवसादाख्य पर आश्रित है। इसी तरह से मूर्तसादाख्य अमूर्तसादाख्य पर तथा कर्तृसादाख्य मूर्तसादाख्य पर आश्रित है। कर्मसादाख्य कर्तृसादाख्य

कर्तृसादाख्यमेवं हि समूर्तादिसमाश्रितम् ।
कर्मरूपं विशेषेण कर्त्रादि तु समाश्रितम् ।।७७।।
अनेनैव प्रकारेण चैकैकं तु समाश्रितम् ।
तस्मात् कर्मस्वरूपं तु पञ्चतत्त्वाश्रितं विदुः ।।७८।।

कर्मसादाख्यस्य पिण्डरूपत्वम्

पञ्चतत्त्वात्मकं ज्ञेयं तत्त्वाधारमिति स्मृतम् ।
एतद्वै कर्मसादाख्यं पिण्डरूपमिहोच्यते ।।७९।।
पिण्डस्थं पिण्डमध्यस्थं पिण्डेन च पुटीकृतम् ।
पिण्डेन पिण्डितं पिण्डं पिण्डरूपमुदाहृतम् ।।८०।।
अतीतकाले मृत्पिण्डरूपं कुम्भे व्यवस्थितम् ।
पञ्चात्मकमभूत् पिण्डं धातुबद्धगुणात्मकम् ।।८१।।
तस्माद्वै कर्मसादाख्यं पिण्डरूपमुदाहृतम् ।
एतच्छिवमयं पिण्डं सर्वतत्त्वालयं विदुः ।।८२।।

पर निर्भर है। इसी तरह से इनकी एक-एक तत्त्व पर तथा अन्य सभी तत्त्वों पर भी निर्भरता मानी गई है। इस तरह से कर्मसादाख्य में पाँचों तत्त्वों की स्थिति बनती है, अतः पंचतत्त्वात्मक होने से इसको सभी तत्त्वों का आधार माना गया है, सर्वत्र इसकी स्थिति है। इसीलिये इसको पिण्डकाय भी कहते हैं, क्योंकि यहाँ आकर मूर्ति का आकार स्पष्ट हो जाता है।।७५-७९।।

इस पिण्ड, अर्थात् कर्मसादाख्य तत्त्व को पिण्डरूप इसलिये कहा जाता है कि पिण्ड, अर्थात् शिवसादाख्य तत्त्व और अमूर्तसादाख्य तत्त्व के मध्य में स्थित है। यह मूर्तसादाख्य तत्त्व से घिरा हुआ है और कर्तृसादाख्य तत्त्व से भी जुड़ा हुआ है। इस प्रकार पाँचों सादाख्य तत्त्व यहाँ इकट्ठा होकर रहते हैं।।८०।।

पहले, बीते हुए काल में मिट्टी के पिण्ड के रूप में दिखाई देने वाली वस्तु जैसे बाद में घड़े के रूप में दिखाई पड़ने लगती है, उसी तरह से यह पंचसादात्मक तत्त्व धातुओं और गुणों से संयुक्त होकर मूर्तिपिण्ड बन जाता है।।८१।।

इसीलिये यह पंचम कर्मसादाख्य तत्त्व पिण्ड रूप माना गया है। यह पिण्ड शिव स्वरूप है। सभी तत्त्वों का यह आश्रय है। पाँचों सादाख्य तत्त्वों के रूप में विद्यमान यह पिण्ड (देह) पाँच तत्त्वों का स्वरूप धारण करता है। इन विभिन्न देहों को धारण करने से गुणभेद के आधार पर यह पंचानन (पंचब्रह्म स्वरूप) हो जाता है।।८२-८३।।

शिवमयात् पिण्डात् शास्त्राणामुत्पत्तिः

पञ्चमूर्तमयं देहं पञ्चतत्त्वात्मकं भवेत्।
मूर्तीनां देहभेदैस्तु गुणैः पञ्चाननं विदुः ।।८३।।

तद्देहात् तु महेशादिसर्वतत्त्वसमुद्भवः।
तस्य वक्त्रेषु संभूताः सिद्धान्ताः शैवतन्त्रकाः ।।८४।।

तत्त्वार्थे तु महेशादिसर्वतत्त्वसमुद्भवः।
सर्वज्ञानमयं देवं सर्वकारणकारणम् ।।८५।।

कर्मेशध्यानम्

एवं लिङ्गे तु कर्मेशं ध्यायेत् सकलनिष्कलम्।
देहस्थं सकलं ज्ञेयं निष्कलं देहवर्जितम् ।।८६।।

देहं त्वेतत् कलोपेतं धातुपिण्डमिति स्मृतम्।
षट्कलं चैव शास्त्रज्ञः षडङ्गेषु प्रकल्पयेत् ।।८७।।

सर्वाङ्गैरेव सम्पूर्णं सर्वावयवसुन्दरम्।
एवं तत्स्मृतिमात्रेण मूर्तिः सकलरूपधृत् ।।८८।।

इस पाँच मुख वाले देह से महेश आदि सभी २५ तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। इस पंचपंचमुख देव के पचीस मुखों से सभी सिद्धान्तों और शास्त्रों की भी उत्पत्ति होती है।।८४।।

वस्तुतः देखा जाय, तो इस पंचब्रह्ममय स्वरूप से ही महेश आदि सभी २५ तत्त्वों का विस्तार होता है। यह भगवान् कर्मेश समस्त ज्ञानों के भण्डार हैं, समस्त कारणों के भी मूल कारण हैं।।८५।।

सकल-निष्कल स्वरूप कर्मसादाख्य तत्त्व का सकल-निष्कल लिंगतत्त्व में ध्यान किया जाता है। सकल स्वरूप देहमय तथा निष्कल स्वरूप देह से रहित है। कर्मसादाख्य तत्त्व का यह देह कलाओं से निर्मित है, धातुपिण्ड के नाम से यह जाना जाता है। छः कलाओं और महेश्वर के छः अंगों से इसकी रचना होती है। यह सकल स्वरूप सभी अंगों से परिपूर्ण है और इसके सभी अवंयव अतीव सुन्दर हैं। भगवान् का स्मरण करने मात्र से आराधक के सामने यह मूर्ति सकल रूप धारण कर लेती है।।८६-८८।।

कला-आदि से सम्पर्क न होने पर यह मूर्ति निष्कल कहलाती है। इस तरह कर्मसादाख्य तत्त्व सकल-निष्कल स्वरूप है। देह के एवं मांस, अस्थि और रुधिर के अभाव में भी इसमें वीर्य आदि गुणों की स्थिति मानी गई है। आकाश में इन्द्रधनुष के समान और

निष्कलं तदभावे तु तस्मात् सकलनिष्कलम् ।
सवीर्यं चैव निर्देहं मांसास्थिरुधिरं न च ।।८९।।

इन्द्रचापमिवाकाशे दर्पणे प्रतिबिम्बवत् ।
इत्येवं मनसाऽऽकल्प्य निष्कलं सकलं भवेत् ।।९०।।

ध्यानलक्षणमित्युक्तमङ्गभावस्त्वथोच्यते ।

चतुर्विधोऽङ्गभेदः

अङ्गभेदो महासेन चतुर्भिर्भेद उच्यते ।।९१।।

अङ्गं प्रत्यङ्गसाङ्गं चोपाङ्गं चत्वारि च क्रमात् ।
शिरो वक्त्रं च हृदयमङ्गं चेति प्रकीर्तितम् ।।९२।।

वक्षः कण्ठः स्तनौ बाहू नाभिगुह्योदराणि च ।
नेत्रे नासास्यकर्णौ च पाणिपादौ तथाङ्गुलिः ।।९३।।

ऊरू च जानुजङ्घे च प्रत्यङ्गं चेति कीर्तितम् ।
मूर्तीनां गुणरूपं च साङ्गं चेति प्रकीर्तितम् ।।९४।।

गुणानां दश भेदाः

गुणश्चिह्नमिति ज्ञेयं तद्गुणो दशधा भवेत् ।
त्रिगुणं शक्तिः खड्गं च दुर्भेद्योऽनुग्रहस्तथा ।।९५।।

दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान मन की कल्पना के सहारे ही निष्कल तत्त्व सकल-स्वरूप में दिखाई पड़ने लगता है।।८९-९०।।

इस प्रकार यहाँ ध्यान का लक्षण बताया गया है। अब अंगभाव के विषय में कहा जा रहा है। हे महासेन ! यह अंगभाव चार प्रकार का होता है। अंग, प्रत्यंग, सांग और उपांग — ये चार उसके भेद हैं। शिर, मुख और हृदय की गणना अंग में की जाती है।।९१-९२।।

वक्षस्थल, कण्ठ, स्तनद्वय, बाहुद्वय, नाभि, गुह्य, उदर, नेत्रद्वय, नासापुट, मुख, कर्णद्वय, पाणिद्वय, पादद्वय, अंगुलियाँ, दोनों जाँघे, दोनों घुटने, दोनों पिण्डलियाँ — ये सब प्रत्यंग कहलाते हैं। मूर्तियों के गुणों और रूपों को सांग कहा जाता है। गुण का अर्थ चिह्न है। इन गुणों की संख्या दस मानी गई है। त्रिगुण, शक्ति, खड्ग, दुर्भेद्य, अनुग्रह, विधि, माया, विवरण, वर्ण और संहार — ये उन दस गुणों के नाम हैं। अब इनके लक्षण बताये जा रहे हैं।।९३-९६।।

त्रिगुण से शूल का ग्रहण होता है। शक्ति से परशु गृहीत है। ईश्वर का प्रसाद खड्ग

विधिर्माया विवरणं वर्णं संहार एव च ।
एते दश गुणाः प्रोक्तास्तेषां लक्षणमुच्यते ।।९६।।

त्रिगुणं शूलमित्युक्तं शक्तिः परशुरीरितः ।
खड्गस्त्वीशप्रतापः स्याद् दुर्भेद्यो वज्रमिष्यते ।।९७।।

ईशस्यानुग्रहश्चैवं अभयं तु प्रशस्यते ।
विधिः स्यान्नागरूपं तु पाशो मायास्वरूपकः ।।९८।।

विवरणमङ्कुशं चैव वर्णं नादात्मकं विदुः ।
संहारस्त्वग्निरूपः स्यात् तेषामाख्याः प्रकीर्तिताः ।।९९।।

एतानि गुणरूपाणि साङ्गानि च यथाक्रमम् ।
वस्त्रोपवीतमाल्यानि गन्धाश्चाभरणं तथा ।।१००।।

तथैवावरणं चैव उपाङ्गं चेति कीर्तितम् ।
अङ्गभेदस्त्विति प्रोक्तस्तत्स्वरूपमिहोच्यते ।।१०१।।

ध्यानस्वरूपम्

कुन्देन्दुस्फटिकाभासं जटामुकुटमण्डितम् ।
पञ्चमूर्धसमायुक्तं पञ्चवक्त्रसमायुतम् ।।१०२।।

तथा दुर्भेद्य स्थल का ग्रहण वज्र से होता है। ईश्वर का अनुग्रह अभय मुद्रा का द्योतक है। विधि शब्द नाग का तथा माया शब्द पाश का द्योतक है। विवरण शब्द से अंकुश का और वर्ण पद से नाद का ग्रहण किया जाता है। संहार शब्द से अग्नि की सूचना मिलती है। इस प्रकार शास्त्रों में दस प्रकार के गुणों, अर्थात् चिह्नों का परिचय दिया गया है।।९७-९९।।

इस तरह से तृतीय भेद सांग के गुणों और रूपों का वर्णन किया गया। अब चतुर्थ भेद उपांग का परिचय दिया जा रहा है। वस्त्र, यज्ञोपवीत, पुष्पमाला, गन्ध (चन्दन), आभरण (अलंकार) और आवरण इन सबका उपांग के रूप में ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार चतुर्विध अंगभेद का विवरण यहाँ दिया गया है। अब सादाख्य तत्त्व के स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है।।१००-१०१।।

हे महासेन ! ये कुन्द पुष्प (बेला), चन्द्रमा और स्फटिक के समान गौर वर्ण वाले, जटा और मुकुट से अलंकृत, पाँच मस्तक और पाँच मुखों से सुशोभित हैं। इनका प्रत्येक मुख तीन तीन नेत्रों से मण्डित है। दस भुजाओं और दो चरणों वाले ये पद्म के आसन पर विराजमान हैं। इनके दक्षिण भाग की पाँच भुजाओं में शूल, परशु, खड्ग, अभय मुद्रा और वज्र तथा वाम भाग की पाँच भुजाओं में नाग, पाश, अंकुश, घण्टा और अग्नि विराजमान हैं। सभी शुभ लक्षणों से संयुक्त, सभी अलंकारों से अलंकृत, दिव्य वस्त्रों से विभूषित यह

प्रतिवक्त्रं विशेषेण त्रिलोचनसमायुतम् ।
दिग्भुजं च महासेन द्विपादं पद्मसंस्थितम् ।।१०३।।

शूलं परशुखड्गौ चाभयवज्रे च दक्षिणे ।
नागं पाशाङ्कुशं चैव घण्टां वह्निं च वामके ।।१०४।।

सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
दिव्याम्बरधरं देवं दिव्यरूपमुदाहृतम् ।।१०५।।

दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यमालाविभूषितम् ।
शान्तरूपमिदं वत्स ! किञ्चित् प्रहसिताननम् ।।१०६।।

एतद्रूपं स्मरेन्नित्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
ध्यानरूपमिदं प्रोक्तं विशेषस्त्वधुनोच्यते ।।१०७।।

पञ्चाननव्यवस्था

कर्मेशं पूर्ववक्त्रं स्यात् कर्तृ स्याद् दक्षिणाननम् ।
अपरं मूर्तवक्त्रं स्यादमूर्तं चोत्तराननम् ।।१०८।।

ऊर्ध्वं तु शिवसादाख्यमेवं पञ्चाननं विदुः ।
ईशानादीनि मूर्धादि तथा कर्मान्तवद् भवेत् ।।१०९।।

देव दिव्य रूप से सम्पन्न हैं। दिव्य गन्ध से इनका सारा शरीर सुवासित है, दिव्य माला धारण किये हुए हैं। हे वत्स ! ये अत्यन्त शान्त स्वभाव के हैं और इनके मुख पर मधुर मुस्कान बिखरी हुई है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाले भगवान् के इस रूप का सदा स्मरण करते रहना चाहिये। ऊपर वर्णित भगवान् का स्वरूप ध्यान के लिये उपयुक्त है। इस विषय की कुछ विशेष बातों की अब चर्चा की जा रही है।।१०२-१०७।।

कर्मसादाख्य का मुख पूर्व दिशा में, कर्तृसादाख्य का दक्षिण में, मूर्तसादाख्य का मुख पश्चिम दिशा में और अमूर्तसादाख्य का मुख उत्तर दिशा में होता है। शिवसादाख्य मूर्ति ऊर्ध्वमुख बनाई जाती है। इस प्रकार पंचवक्त्र सादाख्यतत्त्व की व्यवस्था की गई है। शिवसादाख्य से लेकर कर्मसादाख्य पर्यन्त मूर्तियों में ईशान आदि की मूर्धा (शिर) आदि अंगों के रूप में कल्पना की जाती है।।१०८-१०९।।

पूर्व मुख पूर्व दिशा में माना गया है। पश्चिम मुख पश्चिम दिशा में, दक्षिण मुख दक्षिण दिशा में, उत्तर मुख उत्तर दिशा में और ऊर्ध्वमुख का दक्षिण भाग उत्तराभिमुख और उत्तरभाग पश्चिम-उत्तर दिशा की ओर रहता है। हे षण्मुख ! इस ऊर्ध्व वक्त्र की अपनी कुछ विशेषता है।।११०-१११।।

प्राग्वक्त्रं पूर्वमुद्दिष्टं पश्चिमं पश्चिमाननम्।
दक्षिणाभिमुखं याम्यमुत्तरं चोत्तराननम्॥११०॥

ऊर्ध्वे तु दक्षिणं सव्यमितरं पश्चिमोत्तरम्।
किञ्चिदस्मिन् विशेषोऽस्ति चोर्ध्ववक्त्रे तु षण्मुख॥१११॥

मूलसंचिततद्वक्त्रं परं मुखमिति स्मृतम्।
पूजाकाले तु तद्ध्यात्वा ह्यर्चयेत् कर्मवक्त्रवत्॥११२॥

कर्ममूर्ति(सदाशिव)वैशिष्ट्यम्

एवं संकल्प्य विधिवत् पूजान्ते पूर्ववद् भवेत्।
एतत्पञ्चात्मकत्वात् तु सर्वकारणकारणम्॥११३॥

सदाशिव इति प्रोक्तमिति शास्त्रेषु निश्चितम्।
एतद् वै कर्मवर्मेति कर्मरूपं तु कारयेत्॥११४॥

कर्षणादिक्रियादीनि कर्म चेति निगद्यते।
तस्माद् वै स्थापनादीनि कर्ममूर्तौ तु कारयेत्॥११५॥

लिङ्गे वा स्थण्डिले वापि कुम्भे वा हृदयेऽपि वा।
ध्यात्वा सदाशिवं पूज्य विधिवत् स्थापयेत् ततः॥११६॥

यह ऊर्ध्व वक्त्र ही सबका मूल है। इसीको श्रेष्ठ मुख कहा गया है। पूजा के समय इसीका ध्यान कर कर्मसादाख्य के समान पूजन करना चाहिये॥११२॥

इस तरह शास्त्रीय विधि के अनुसार आवाहन आदि सारी पूजाविधि को पूरा कर लेने के उपरान्त अन्त में पुनः पाँचों सादाख्यों का क्रम यथापूर्व हो जाता है। यह पंचसादात्मक स्वरूप ही सभी कारणों का भी कारण है, अर्थात् पंचतन्मात्राओं और पंचमहाभूतों की उत्पत्ति इन्हींसे होती है। शास्त्रों में इन्हीं का सदाशिव के रूप में वर्णन मिलता है। सृष्टि में कर्म रूप की प्रधानता रहने से प्रधान रूप से सभी कर्मों के प्रारंभ में इन्हींकी पूजा की जाती है॥११३-११४॥

भूमिकर्षण आदि सबको क्रिया कहा जाता है। इसीलिये स्थापन आदि कार्यों को भी कर्मसादाख्य मूर्ति में ही करना चाहिये। लिंग, स्थण्डिल, कुंभ अथवा हृदय में सदाशिव का ध्यान और पूजन करने के बाद उनकी विधिवत् प्रतिष्ठा की जाती है॥११५-११६॥

अपने हृदय में चिन्मय प्रकाश का आवाहन किया जाता है। वहाँ उनको बैठा लेना ही स्थापन है। ईश्वर का सामीप्य मुझे सदा मिलता रहे, यह भावना ही संनिधान कहलाती है। अपने हृदय में शिव के स्वरूप को बैठा लेना ही संरोधन कहलाता है॥११७॥

कर्तृसादाख्य आदि चार रूपों की स्थापना नहीं की जाती। हे गुह ! योगी जन और

आवाहनं स्वात्मनि चित्प्रकाशस्तत्र स्थितिः स्थापनमीश्वरस्य ।
सान्निध्यमात्मेश्वरसन्निधानं संरोधनं स्वस्य शिवे निरोधः ।।११७।।

कर्त्रादिकचतुर्णां तु स्थापनं च न कारयेत् ।
योगिनां मन्त्रिणां चैव स्तुतिमात्रं भवेद् गुह ।।११८।।

इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तं कर्मसादाख्यलिङ्गकम् ।
शिवादिकर्मपर्यन्तं क्रमेणैव प्रकीर्तितम् ।।११९।।

सादाख्यलक्षणं प्रोक्तं महेशं शृणु षण्मुख ।

महेशस्वरूपम्

कर्मेशस्य सहस्रांशाद् महेशस्य समुद्भवः ।।१२०।।

महेशं सकलं विद्यात् सृष्टिस्थितिलयावहम् ।
पञ्चविंशतिभेदैस्तु तन्मूर्तिर्विविधा भवेत् ।।१२१।।

नानारूपधरं देवं नानारूपसमन्वितम् ।
नानाचिह्नसमोपेतं नानालीलामनोहरम् ।।१२२।।

स्थानयानसमासीनं नृत्तकोपमसौम्यकम् ।
अनेकाकारसंयुक्तं देवदेवं महेश्वरम् ।।१२३।।

मन्त्रों के आराधक मात्र इनकी स्तुति करते हैं॥११८॥

इन सब लक्षणों से युक्त कर्मसादाख्य लिंग का यहाँ विस्तार से वर्णन किया गया है। शिवसादाख्य से लेकर कर्मसादाख्य पर्यन्त पाँचों तत्त्वों का यहाँ क्रमशः स्वरूप वर्णित है। हे षण्मुख ! इस प्रकार सादाख्य तत्त्व का स्वरूप यहाँ विस्तार से बताया गया है। अब महेश का लक्षण सुनो॥११९-१२०॥

कर्मसादाख्य के हजारवें अंश से महेश की उत्पत्ति मानी गई है। महेश भगवान् शिव का सकल स्वरूप है। ये ही जगत् की सृष्टि-स्थिति-लय के कारण हैं। पचीस प्रकार के नाना स्वरूपों को ये धारण कर लेते हैं॥१२०-१२१॥

नाना प्रकार के आकारों को, स्वरूपों को ये धारण कर लेते हैं, नाना प्रकार के चिह्नों से ये पहचाने जाते हैं। सबके कष्टों को दूर कर देने वाले भगवान् शिव नाना प्रकार की लीलाओं को करते रहते हैं। ये भगवान् महेश्वर विविध स्थानों पर, विविध वाहनों पर आसीन रहते हैं। नृत्त, कोप या सौम्य रूप में ये दर्शन देते हैं। ये देवदेव, महेश्वर अनेक आकार धारण कर लेते हैं। जटा और मुकुट धारण करते हैं। एक मुख, तीन नेत्र और चार भुजाओं से सुशोभित हैं। पद्मासन पर विराजमान हैं। अपनी चार भुजाओं में वरद और अभय मुद्रा

जटामुकुटसंयुक्तमेकवक्त्रं त्रिणेत्रकम् ।
चतुर्भुजसमायुक्तं एकपद्मासनस्थितम् ।। १२४।।
वरदाभयहस्तं च मृगीपरशुधारकम् ।
महेशरूपमित्युक्तं रूपभेदस्त्वथोच्यते ।। १२५।।

पञ्चविंशत्यवताराः

प्रथमं सोमधारी स्याद् द्वितीयमुमया सह ।
तृतीयं च वृषारूढं चतुर्थं नृत्तरूपकम् ।। १२६।।
वैवाहं पञ्चमं विद्यात् षष्ठं भिक्षाटनं भवेत् ।
कामारिः सप्तमं विद्यात् कालारिश्चाष्टमं भवेत् ।। १२७।।
नवमं त्रिपुरारिः स्याज्जालन्धरवधो दशम् ।
एकादशमजारिः स्याद् द्वादशं वीरभद्रकः ।। १२८।।
त्रयोदशं हरिध्वंसी त्वर्धनारी चतुर्दशम् ।
किरातः स्यात् पञ्चदशं कङ्काली षोडशं भवेत् ।। १२९।।
चण्डेशानुग्रहश्चैव तथा सप्तदशं भवेत् ।
विषापहरणश्चैव अष्टादशमिति स्मृतम् ।। १३०।।

को तथा मृगलांछन और परशु को धारण किये हुए हैं। इस प्रकार भगवान् महेश का यह मुख्य रूप है। इनके अन्य रूपों का वर्णन आगे किया जा रहा है।। १२२-१२५।।

इनका पहला रूप सोमधारी (शशिचूड), दूसरा उमा के साथ (उमाकान्त), तीसरा वृषारूढ, चौथा ताण्डव नृत्त रत, पाँचवाँ वैवाह रूप, छठा भिक्षाटन रत, सातवाँ काम को भस्म करने वाला, आठवाँ काल का भक्षक, नवाँ पुरत्रय का नाशक (त्रिपुरारि), दसवाँ जालन्धर का वध करने वाला, ग्यारहवाँ ब्रह्मा के दर्प का नाशक, बारहवाँ वीरभद्र का अवतार, तेरहवाँ हरिध्वंस नामक, चौदहवाँ अर्धनारीश्वर, पन्द्रहवाँ किरातवेषधारी, सोलहवाँ कंकालधारी, सत्रहवाँ चण्डेश पर अनुग्रह करने वाला, अठारहवाँ विष का अपहारक, उन्नीसवाँ विष्णु को चक्रदान करने वाला, बीसवाँ विघ्नेश (गणेश) को वर प्रदान करने वाला, इक्कीसवाँ सोमास्कन्द, बाईसवाँ एकपाद, तेईसवाँ सुखावह, चौबीसवाँ दक्षिणामूर्ति और पचीसवाँ लिंगोद्भव स्वरूप है। ये सब महेश के ही मूर्तिभेद माने गये हैं।। सोमधारी (चन्द्रचूड) से लेकर लिंगोद्भव पर्यन्त ये पचीस स्वरूप महेश की ही विभूतियाँ हैं। ये सारे रूप कर्मसादाख्य से उत्पन्न हुए हैं। इस तरह से महेश की पचीस मूतियों का स्वरूप यहाँ बताया गया है।। १२६-१३५।।

चक्रदानस्वरूपं च एकोनविंशतिः स्मृतम् ।
विघ्नप्रसादो विंशः स्यात् सोमास्कन्दस्ततः परम् ।।१३१।।

द्वाविंशमेकपादः स्यात् त्रयोविंशः सुखावहः ।
दक्षिणामूर्तिरूपं तु चतुर्विंशमितीरितम् ।।१३२।।

लिङ्गोद्भवस्वरूपं तु पञ्चविंशं प्रकीर्तितम् ।
एते महेशरूपाश्च मूर्तिभेदाः प्रकीर्तिताः ।।१३३।।

सोमधार्यादिलिङ्गान्तं कर्मणश्च समुद्भवम् ।
एते महेशरूपाश्च कर्माख्याच्च समुद्भवाः ।।१३४।।

पञ्चविंशतिभेदेन रूपभेदाः प्रकीर्तिताः ।

रुद्रादीनां समुद्भवः

महेशस्य सहस्रांशाद् रुद्रदेवसमुद्भवः ।।१३५।।
तन्महेश्वरकोट्यंशाद् विष्णुदेवसमुद्भवः ।
विष्णुदेवस्य कोट्यंशाद् ब्रह्मदेवसमुद्भवः ।।१३६।।
नेत्रदक्षिणवामोर्ध्वे सूर्यसोमाग्निसंभवः ।
घ्राणे वायुः समुत्पन्नः गणेशस्तु गलोद्भवः ।।१३७।।
षण्मुखो हृदये जातो नाभेर्देवादिसंभवः ।
पञ्चाशत्कोटिदेवाश्च महेशस्वेदसंभवाः ।।१३८।।
ऋषयश्च तथा कोट्यो रोम्णि चैव समुद्भवाः ।
तत्त्वानामुद्भवः प्रोक्तः शक्तीनामुद्भवं शृणु ।।१३९।।

इस महेश के हजारवें अंश से रुद्रदेव (महेश्वर) की उत्पत्ति होती है। महेश्वर के करोड़वें अंश से विष्णुदेव की और विष्णुदेव के करोड़वें अंश से ब्रह्मदेव के उत्पत्ति होती है। महेश्वर के दक्षिण, वाम और ऊर्ध्व नेत्रों से सूर्य, सोम और अग्नि उत्पन्न होते हैं। घ्राण से वायु, गले से गणेश, हृदय से स्कन्द और नाभि से सभी देवताओं की उत्पत्ति होती है। इस महेश के स्वेद (पसीने) से पचास करोड़ देवता और रोमकूपों से करोड़ों ऋषियों की उत्पत्ति मानी गई है॥१३५-१३९॥

इस प्रकार तत्त्वों की उत्पत्ति की प्रक्रिया को यहाँ बताया गया है। अब शक्तियों की उत्पत्ति की प्रक्रिया को सुनो। बिन्दु के दशांश से उमा शक्ति की उत्पत्ति होती है। उमा, अम्बिका, गणेशी, ईश्वरी और मनोन्मनी — ये पाँच शक्तियाँ एक-एक के दशांश से क्रमशः उत्पन्न होती हैं। ये पाँचों शिवसादाख्य आदि की शक्तियाँ हैं॥१३९-१४१॥

मनोन्मनी के हजारवें अंश से गौरी की उत्पत्ति मानी जाती है। उमा के प्रभाव से ही

शक्तीनां समुद्भवः

बिन्दुरूपदशांशेन चोमाशक्तिसमुद्भवः ।
उमाऽम्बिका गणेशी च ईश्वरी च मनोन्मनी ।।१४०।।
एकैकेन दशांशेन जायते क्रमशस्तथा ।
एता वै शक्तयः पञ्च शिवादीनां तु शक्तयः ।।१४१।।
मनोन्मनीसहस्रांशाद् गौरी जातेति कीर्तिता ।
तस्याः सरस्वती दुर्गा उमायाश्च प्रभावतः ।।१४२।।
शची ज्येष्ठा च लक्ष्मीश्च तथा चान्याश्च शक्तयः ।
कोटिशक्तय एता वै गौरीदेहसमुद्भवाः ।।१४३।।
शक्तिभेदो विशेषेण समासात् परिकीर्तितः ।
शिवादयो महेशान्ता एकत्रिंशत् प्रकीर्तिताः ।।१४४।।

पटलफलश्रुतिः

यो वेत्ति तत्त्वभेदं हि स पूजास्थापनार्हकः ।
एवं त्रिमूर्तिभेदस्तु समासात् परिकीर्तितः ।
तत्त्वभेदो मया प्रोक्तो वर्णभेदमतः शृणु ।।१४५।।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे तत्त्वभेदो नाम प्रथमः पटलः समाप्तः ।।

गौरी से सरस्वती और दुर्गा का प्रादुर्भाव होता है। इसी तरह से शची, ज्येष्ठा, लक्ष्मी और अन्य भी अनेकों शक्तियाँ हैं। ये सब करोड़ों शक्तियाँ गौरी के देह से ही उत्पन्न होती हैं। शक्तियों के भेदों को यहाँ विशेष कर संक्षेप में ही बताया गया है॥१४१-१४३॥

शिव से लेकर महेश पर्यन्त देवताओं के इकतीस भेदों का यहाँ प्रतिपादन किया गया है। जो इनके स्वरूपों के भेदक तत्त्वों को ठीक से जानता है, वही इनकी पूजा करने का और प्रतिष्ठा आदि करने का सही अधिकारी माना गया है॥१४४॥

इस तरह से तत्त्वभेद प्रकरण में त्रिविध तत्त्वों के मूर्ति (स्वरूप) के भेदों को संक्षेप में बताया गया है। अब आगे वर्णभेद के स्वरूप को सुनो॥१४५॥

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का यह तत्त्वभेद नामक प्रथम पटल पूरा हुआ।।१।।

❋❋❋

द्वितीयः पटलः

वर्णभेदविधिः

अथातः संप्रवक्ष्यामि वर्णभेदविधिं परम्।
मन्त्राणामुद्भवं चैव वर्णानां च समुद्भवम्।।१।।

अकारादिक्षकारान्ता एकपञ्चाशदक्षराः।
एते वर्णाः प्रशस्यन्ते कामितार्थप्रदायकाः।।२।।

स्त्रीरूपाश्चैव पुंरूपास्तथा चोभयरूपकाः।
सर्वे वै देवतारूपाः प्रत्येकं वर्णरूपधृत्।।३।।

वर्णो बीजं तथार्णश्च लिङ्गमक्षरमातृकम्।
एतानि षट् च नामानि वर्णपर्यायवाचकाः।।४।।

तेषां समुद्भवो नामरूपभेदस्तथांशकः।
तत्त्वमात्रादिभेदश्चाप्यधिदैवफलं तथा।।५।।

स्थूलसूक्ष्माकृतिं चैव जीवोपाधिविभेदकम्।
एतद्भेदं समासेन संक्षेपाच्छृणु षण्मुख।।६।।

अब मैं वर्णभेद की श्रेष्ठ विधि को बताऊँगा। वर्णों से ही मन्त्रों की उत्पत्ति होती है। वर्णों की उत्पत्ति का प्रकार भी इसी के साथ बताया जा रहा है।।१।।

अकार से क्षकार पर्यन्त वर्णों की संख्या ५१ मानी जाती है। ये सब इसलिये प्रशंसनीय हैं कि इनसे मानव को अपने इच्छित फल की प्राप्ति होती है।।२।।

ये वर्ण स्त्रीरूप, पुरुषरूप और उभय-स्वरूप भी माने जाते हैं। ये सभी देवता-स्वरूप हैं। ये ही अलग-अलग वर्णों का स्वरूप धारण कर लेते हैं।।३।।

वर्ण, बीज, अर्ण, लिंग, अक्षर, मातृका — ये सभी छः नाम वर्णों के पर्यायवाची हैं।।४।।

इनकी उत्पत्ति, नाम और रूप का भेद, अंशक का निरूपण, तत्त्वों और मात्राओं का भेद, इनके अधिदेवता और फल, स्थूल और सूक्ष्म आकृति, जीवोपाधिक भेद — इन सबको हे छः मुख वाले महासेन ! तुम संक्षेप में सुनो।।५-६।।

वर्णसमुद्भवः

शिवतत्त्वात् परात् सूक्ष्माद् बिन्दुरूपं तु जायते ।
बिन्दोर्नादः समुत्पन्नो नादाच्छक्तिरजायत ।।७।।

शक्तेस्तु जायते शब्दः शब्दाज्जातं तु वाग्भवम् ।
वाग्भवाच्च कला जाताः कलाभ्यो विकलास्तथा ।।८।।

तस्माद्वै वाचको मन्त्रो मन्त्रस्तैरेव भिद्यते ।
एष सृष्टिक्रमः प्रोक्तस्तेषां लक्षणमुच्यते ।।९।।

बिन्दुरूपा परा शक्तिर्नादश्चैवादिरुच्यते ।
शक्तिरिच्छेति विज्ञेया शब्दो ज्ञानमिहोच्यते ।।१०।।

वाग्भवं स्यात् क्रियाशक्तिः कला वै षोडश स्वराः ।
तेषां रूपं द्विधा प्रोक्तं प्रकृतिर्विकृतिस्तथा ।।११।।

प्रकृतिः सप्त वर्णाश्च विकृतिस्तु नवार्णकाः ।
अकारश्च इकारश्च उकारश्च ऋकारकः ।
लृकारश्चैव एकार ओकारश्च तथैव च ।।१२।।

एते सप्त स्वराः प्रोक्ताः प्रकृतिस्तु समीरिता ।
शेषास्तु विकृतिः प्रोक्तास्तेषामुद्भव उच्यते ।।१३।।

परमसूक्ष्म शिवतत्त्व से बिन्दु की उत्पत्ति होती है। बिन्दु से नाद उत्पन्न होता है और नाद से शक्ति की उत्पत्ति होती है। शक्ति से शब्द और शब्द से वाग्भव उत्पन्न होता है। वाग्भव से कलाओं की और कलाओं से विकलाओं की उत्पत्ति मानी गई है। विकलाओं से वाचक मन्त्रों की उत्पत्ति होती है। कलाओं और विकलाओं के कारण ही ये परस्पर एक दूसरे से भिन्न हो जाते हैं। इस प्रकार यहाँ वर्ण-सृष्टि का क्रम बताया गया है, अब तुम इनके लक्षण सुनो।।७-९।।

पराशक्ति ही बिन्दु का स्वरूप धारण करती है। आदिशक्ति नाद का, इच्छा शक्ति का, ज्ञान शब्द का और क्रियाशक्ति वाग्भव का स्वरूप धारण कर लेती है। सोलह स्वरों को कला नाम दिया गया है। प्रकृति और विकृति के रूप में इनका वर्णन किया जाता है।।१०-११।।

सात वर्णों को प्रकृति और नौ वर्णों को विकृति कहा गया है। अकार, इकार, उकार, ऋकार, लृकार, एकार और ओकार — ये सात स्वर प्रकृति वर्ण कहे जाते हैं। शेष नौ स्वर विकृति कहलाते हैं। इनकी उत्पत्ति का प्रकार बताया जा रहा है।।१२-१३।।

अकारेऽजायताकार इकारे त्वीसमुद्भवः ।
उकारे चैव ऊकार ऋकारे ॠसमुद्भवः ।।१४।।

लृकारादेव लॄकार एकारादैसमुद्भवः ।
ओकाराद् औ तथा ज्ञेयः क्रमेणैव समुद्भवः ।।१५।।

एते विकृतयः प्रोक्ता आकारादिनवार्णकाः ।
अकारादिविसर्गान्ता एते वै षोडश स्वराः ।।१६।।

नामरूपभेदः

कला मात्रा स्वरा जीवाः प्रकृतिर्विकृतिस्तथा ।
प्राण आत्मा ना च देही कलापर्यायवाचकाः ।।१७।।

एतानि दश नामानि कलास्वेव प्रयुञ्जते ।
कलाभेदस्त्वयं प्रोक्तो विकलाभेदकं शृणु ।।१८।।

ककारादिक्षकारान्ता वर्णाश्च विकलाः स्मृताः ।
ककारादीनि वर्णानि अकारादिसमुद्भवाः ।।१९।।

ओकारात् तु समुद्भूता यकारादिदशाक्षराः ।
देहोपाधिशरीराणि क्षेत्राधारौ तनुस्तथा ।।२०।।

व्यञ्जनं विकला शक्तिर्बिन्दुपर्यायवाचकाः ।
कलानां विकलानां च रूपत्रयमिहोच्यते ।।२१।।

अकार से आकार की उत्पत्ति होती है। इसी तरह से इकार से ईकार की, उकार से ऊकार की, ऋकार से ॠकार से की, लृकार से लॄकार की, एकार से ऐकार की और ओकार से औकार, अंकार और अःकार की निष्पत्ति मानी गई है॥१४-१५॥

आकार आदि से नौ स्वर विकृति कहलाते हैं। प्रकृति और विकृति, अकार से लेकर विसर्ग पर्यन्त ये सब मिलकर सोलह स्वर होते हैं॥१६॥

कला, मात्रा, स्वर, जीव, प्रकृति, विकृति, प्राण, आत्मा, पुरुष और देही — ये दस शब्द कला के पर्याय हैं। (ये सभी नाम कलाओं के ही माने गये हैं। इस तरह से कला के भेदों को बताया गया है। अब विकला के भेदों को सुनो॥१७-१८॥

ककार से क्षकार पर्यन्त वर्णों को विकला कहा जाता है। ये सब वर्ण अकार से उत्पन्न होते हैं। ओकार से यकार आदि दस वर्ण उत्पन्न हुए हैं।) देह, उपाधि, शरीर, क्षेत्र, आधार, तनु, व्यंजन, विकला, शक्ति, बिन्दु — ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। इस कलाओं और विकलाओं के तीन-तीन रूप होते हैं, उन्हें यहाँ बताया जा रहा है॥१९-२१॥

रूपत्रयम्

शिवाग्निभूतरुद्राश्च त्रयोदश तिथिस्तथा ।
एते वै स्वरवर्णाश्च पुंलिङ्गाश्चेति कीर्तिताः ।।२२।।

पक्षो वेदो रसो भानुर्मनुश्चैवाधिकारकम् ।
एतानि षट् च बीजानि स्त्रीलिङ्गानीति कीर्तितम् ।।२३।।

ऋ ॠ ऌ ॡ च चत्वारो नपुंसका इति स्मृताः ।
ककारश्च गकारश्च चकारश्च जकारकः ।।२४।।

टकारश्च डकारश्च तकारश्च दकारकः ।
पकारश्च बकारश्च क्षकारश्च हकारकः ।।२५।।

एते द्वादश वर्णाश्च पुंलिङ्गाश्चेति कीर्तिताः ।
खकारश्च घकारश्च छकारश्च झकारकः ।।२६।।

ठकारश्च ढकारश्च थकारश्च धकारकः ।
फकारश्च भकारश्च शकारश्च सकारकः ।।२७।।

एतानि भानुबीजानि जायाश्चेति प्रकीर्तिताः ।
शेषान् नपुंसकान् विद्यात् त्रयो भेदा इति स्मृताः ।।२८।।

शिव[१], अग्नि[३], भूत[५], रुद्र[११], त्रयोदश[१३] और तिथि[१५] ये सब स्वरवर्ण पुंलिंग कहे गये हैं। पक्ष[२], वेद[४], रस[६], सूर्य[१२], मनु[१४] और अधिकार[१६] ये छः स्वर स्त्रीलिंग हैं। ऋ ॠ ऌ ॡ ये चार स्वर नपुंसक हैं।।२२-२४।।

ककार, गकार, चकार, जकार, टकार, डकार, तकार, दकार, पकार, बकार, क्षकार और हकार — ये बारह व्यंजन पुंलिंग हैं। खकार, घकार, छकार, झकार, ठकार, ढकार, थकार, धकार, फकार, भकार, शकार, सकार — ये बारह व्यंजन स्त्रीलिंग माने गये हैं। शेष वर्ण (व्यंजन) नपुंसक कोटि में आते हैं। इस तरह से स्वरों और व्यंजनों की तीन-तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं।।२५-२८।।

अकार आदि तीन स्वर आकाश के, ईकार आदि पवन के, ऋकार आदि अग्नि के, ऌकार आदि जल के तथा ओकार आदि तीन स्वर पृथ्वी के अंश हैं।

(ककार से ङकार पर्यन्त पांच तथा लकार और ळकार ये सात व्यंजन पृथिवी के अंश हैं। चकार आदि पाँच, वकार और शकार ये सात जल के; टकार आदि पाँच, हकार और षकार ये सात तेजस्तत्त्व के; तकार आदि पाँच, यकार और सकार ये सात वायुतत्त्व के और पकार आदि पाँच, हकार और क्षकार ये सात आकाश तत्त्व के अंश हैं। इस प्रकार यहाँ अंशकों का वर्णन किया गया है।)

अंशकविचारः

अकारादित्रयो व्योम ईकारादित्रयोऽनिलः ।
ऋकारादित्रिवर्णाश्च वैश्वानर इति स्मृताः ।।२९।।

[लृकारादित्रयो ह्याप ओकारादित्रयो मही ।
ककारादिङकारान्ता लकारश्च ळकारकः ।
पृथिव्यंशा इति ज्ञेयं चकारादीति पञ्चकम् ।।

बकारश्च शकारश्च जलांशका इति स्मृताः ।
टकारादिणकारान्ता रकारश्च षकारकः ।।

तेजोंऽशका इति ज्ञेयं तकारादीति पञ्चकम् ।
यकारश्च सकारश्च ह्यनिलांशा इति स्मृताः ।।

पकारादिमकारान्ता हकारश्च क्षकारकः ।
व्योमांशका इति ज्ञेयं ह्येषा वै त्वंशकस्मृतिः ।।]

तत्त्वमात्रादिभेदः

प्रकृतिस्तत्त्वबीजं स्याद् विकृतिर्मूर्तिरुच्यते ।।३०।।

प्रभावो विकलाः प्रोक्ता इत्येवं त्रिविधं भवेत् ।
प्रकृतिर्ह्रस्व इत्युक्ता विकृतिर्दीर्घ उच्यते ।।३१।।

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं त्वर्धमात्रकम् ।।३२।।

देवताफलविचारः

अकारः सर्वदैवत्यो रक्तो सर्ववशीकरः ।
आकारः स्यात् परा शक्तिः श्वेतश्चाकर्षणो भवेत् ।।३३।।

प्रकृति नामक सात स्वर तत्त्वबीज तथा विकृति नामक नौ स्वर मूर्ति बीज कहलाते हैं। ककार से क्षकार पर्यन्त विकलाओं (व्यंजनों) को भाव नाम दिया गया है। इस तरह से प्रकृति, विकृति और विकलाओं को ये पर्याय नाम हैं॥२९-३१॥

इनमें से प्रकृति की ह्रस्व और विकृति को दीर्घ कहा जाता है। एक मात्रा वाला स्वर ह्रस्व और दो मात्रा का स्वर दीर्घ कहलाता है। तीन मात्रा का स्वर प्लुत है और व्यंजन की आधी मात्रा मानी गई है। प्रकृति और विकृति नामक स्वरों की और विकलाओं की ये मात्राएँ मानी गई हैं॥३१-३२॥

अकार में सभी देवताओं का वास है। इसका रंग लाल है और इसमें सबको वश में करने की सामर्थ्य है। आकार में पराशक्ति का वास है। इसका रंग श्वेत है और आकर्षण

इकारो विष्णुदैवत्यः श्यामो रक्षाकरो भवेत् ।
मायाशक्तिरितीकारः पीतः स्त्रीणां वशीकरः ।।३४।।

उकारो वास्तुदैवत्यः कृष्णो राज्यवशीकरः ।
ऊकारो भूमिदैवत्यः श्यामो लोकवशीकरः ।।३५।।

ऋकारो ब्रह्मणो ज्ञेयः पीतो ग्रहविनाशनः ।
शिखण्डिरूप ॠकारो ह्यञ्जनो ज्वरनाशकः ।।३६।।

अश्विनीभ्यां ऌ-ॡ चैव श्वेतरक्तौ ज्वरापहौ ।
एकारो वीरभद्रीयः पीतः सर्वार्थसिद्धिदः ।।३७।।

ऐकारं वाग्भवं विद्यात् स्फाटिकं ज्ञानसिद्धिदम् ।
ओकारमीश्वरं विद्याज्ज्योतिः सर्वफलप्रदम् ।।३८।।

औकार आदिशक्तिः स्याच्छुक्लः सर्वार्थसिद्धिदः ।
अंकारस्तु महेशः स्याद् रक्तवर्णः सुखप्रदः ।।३९।।

अःकारः कालरुद्रश्च रक्तः पाशनिकृन्तनः ।
प्राजापत्यः ककारः स्यात् पीतः पुष्टिकरो भवेत् ।।४०।।

शक्ति से संपन्न है। इकार का देवता विष्णु, वर्ण श्याम और यह रक्षा करने वाला है। ईकार में मायाशक्ति का निवास है। इसका वर्ण पीत है और स्त्रियों को वश में करने की सामर्थ्य इसमें है। उकार का देवता वसु है। कृष्ण वर्ण और राज्य-वशीकरण की इसमें सामर्थ्य है। ऊकार की देवता भूमि है, वर्ण श्याम और इसमें लोक को वश में करने की सामर्थ्य है।।३३-३५।।

ऋकार का देवता ब्रह्मा, वर्ण पीत और ग्रहों के दोषों का नाश करने की सामर्थ्य इसमें हैं। ॠकार के देवता शिखण्डी, कज्जल श्याम वर्ण और इसमें ज्वरनाशक सामर्थ्य है। ऌकार और ॡकार के देवता दोनों अश्विनीकुमार हैं, इनका श्वेत और रक्त वर्ण है तथा ज्वर का नाश करने की सामर्थ्य इनमें है।।३६-३७।।

एकार का देवता वीरभद्र, वर्ण पीत और सभी वांछित वस्तुओं को देने की सामर्थ्य इसमें है। ऐकार को वाग्भव कहा जाता है। सरस्वती देवता और स्फटिकसदृश वर्ण है। सर्वविध ज्ञान की सिद्धि का यह दाता है। ओकार का देवता ईश्वर है। इसका वर्ण तेजोमय है तथा यह सभी फलों को देने वाला है। औकार की देवता आदिशक्ति है। इसका वर्ण शुक्ल और यह सर्वार्थदायक है। अंकार के देवता महेश हैं, वर्ण रक्त और यह सबको सुख देने वाला है। अःकार (विसर्ग) के देवता कालरुद्र, रक्त वर्ण और पाशों को काट डालने की सामर्थ्य इसमें है।।३७-४०।।

खकारो जाह्नवीबीजं क्षीराभः पापनाशनः ।
गकारो गणबीजं स्याद् रक्ताभो विघ्ननाशनः ।।४१।।

घकारो भैरवो ज्ञेयो मुक्ताभः शत्रुनाशनः ।
ङकारः कालबीजं स्यात् कालः सर्वजयी भवेत् ।।४२।।

चकारश्चण्डरुद्रः स्यादञ्जनस्त्रिपुरापहः ।
छकारो भद्रकाली स्याद् राजावर्तो जयप्रदः ।।४३।।

जकारो जम्भहा ज्ञेयो रक्ताभश्च जयावहः ।
झकारस्त्वर्धनारी स्यात् श्यामरक्तो जयावहः ।।४४।।

ञकारः कोटिर्विज्ञेयः पीतो रोगविनाशकः ।
भृङ्गीशः स्यात् टकारस्तु रक्तः सर्वसुखावहः ।।४५।।

ठकारश्चन्द्रबीजं स्यात् श्वेतो मृत्युविनाशनः ।
डकारश्चैकनेत्रः स्यात् पीतः कालजयप्रदः ।।४६।।

ढकारो यमबीजं स्यान्नीलो मृत्युविनाशनः ।
णकारो नन्दिबीजं स्याद् रक्ताभश्चार्थसिद्धिदः ।।४७।।

ककार के प्रजापति देवता, वर्ण पीत और यह पुष्टिकर है। खकार की जाह्नवी देवता, दुग्धसदृश वर्ण और यह पाप का नाश करने वाला है। गकार गणस्वरूप, रक्त वर्ण और विघ्ननाशक है। घकार के देवता भैरव, मुक्ताभ वर्ण और यह शत्रुओं का नाशक है। ङकार के देवता काल, वर्ण कृष्ण और यह सब पर विजय प्राप्त कराने वाला है।।४०-४२।।

चकार के देवता चण्डरुद्र हैं। इसका वर्ण अंजनसदृश काला और यह तीनों तापों को हरने वाला है। छकार की देवता भद्रकाली है। राजावर्त के सदृश इसका रंग और यह जय देने वाला है। जकार का देवता इन्द्र है। इसका वर्ण रक्त और यह विजयदाता है। झकार के देवता अर्धनारीश्वर हैं। रंग श्याम-रक्त है। सर्वत्र विजय दिलाता है। ञकार का देवता कोटिरुद्र, वर्ण पीत और इसमें रोगविनाशक सामर्थ्य है।।४३-४५।।

टकार के देवता भृंगीश, वर्ण रक्त और यह सभी प्रकार के सुखों का दाता है। ठकार चन्द्रमा का बीज है। इसका वर्ण श्वेत और यह मृत्यु का निवारक है। डकार के देवता एकनेत्र, रंग पीला और यह कालजयी है। ढकार यम का बीज है, नील वर्ण और मृत्यु का नाश करता है। णकार नन्दी का बीज है। वर्ष लाल और यह सर्वार्थसिद्धिप्रद है।।४५-४७।।

तकार के देवता वास्तुपुरुष हैं, श्वेत वर्ण और यह सब पर विजय दिलाता है। थकार धर्मराज का बीज है, कुन्द पुष्प के समान श्वेत वर्ण और जयप्रद है। दकार दुर्गा का बीज,

तकारो वास्तुदैवत्यः श्वेतः सर्वजयी भवेत् ।
थकारो धर्मिणो ज्ञेयः कुन्दाभः स्याज्जयप्रदः ।।४८।।

दुर्गाबीजं दकारः स्यात् श्यामः सर्वार्थसिद्धिदः ।
धकारो धनदः प्रोक्तः पीताभश्चार्थसिद्धिदः ।।४९।।

नकारश्चैव सावित्री स्फाटिकः पापनाशनः ।
पर्जन्यस्तु पकारः स्यात् शुक्लाभो वृष्टिसिद्धिदः ।।५०।।

फकारः पाशुपत्यः स्यात् श्वेतः पाशनिकृन्तनः ।
बकारस्तु त्रिमूर्तिः स्यात् पीतः सर्वार्थसिद्धिदः ।।५१।।

भकारं भार्गवं विद्याद् रक्तं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
मकारं मदनं विद्यात् श्यामं सर्वजयप्रदम् ।।५२।।

यकारो वायुदैवत्यः कृष्ण उच्चाटनो भवेत् ।
रकारो वह्निदैवत्यो रक्ताभः संहृतिर्भवेत् ।।५३।।

लकारस्त्ववनीबीजं पीतश्च स्तम्भनो भवेत् ।
वारुणः स्याद् वकारस्तु शुक्लाभो रोगनाशनः ।।५४।।

श्याम वर्ण और सर्वार्थसिद्धि को दिलाने वाला है। धकार धनद (कुबेर) का बीज है। पीत वर्ण और इच्छित अर्थ को देने वाला है। नकार की देवता सावित्री है। स्फटिक-सदृश उज्ज्वल श्वेत वर्ण और यह पापों का नाशक है।।४८-५०।।

पकार के देवता पर्जन्य हैं। शुक्ल वर्ण और यह वृष्टि का प्रदाता है। फकार के देवता पशुपति, श्वेत वर्ण और यह पाशों का नाशक है। बकार के देवता त्रिमूर्ति हैं। यह पीत वर्ण और सर्वार्थसिद्धि को देने वाला है। भकार के देवता भार्गव हैं। इसका वर्ण रक्त और यह सभी मनोकामनाओं को पूरा करता है। मकार के देवता मदन हैं। इसका वर्ण श्याम है। यह सर्वत्र विजय दिलाता है।।५१-५२।।

यकार के देवता वायु, कृष्ण वर्ण और यह उच्चाटन कर्म में विनियुक्त है। रकार के देवता वह्नि, रक्त वर्ण और यह संहार-कारक है। लकार की देवता पृथ्वी, पीत वर्ण और यह स्तंभनकारक है। वकार के देवता वरुण, शुक्ल वर्ण और यह रोगनाशक है।।५३-५४।।

शकार की देवता लक्ष्मी, पीत वर्ण और यह धन-धान्य का प्रदाता है। षकार की देवता सूर्य हैं। इसका वर्ण रक्त और सर्वार्थसिद्धि देता है। सकार की देवता शक्ति, वर्ण

लक्ष्मीबीजं शकारः स्याद् हेमाभः श्रीकरो भवेत् ।
षकारः सूर्यबीजं स्याद् रक्तः सर्वार्थसिद्धिदः ।।५५।।

सकारः शक्तिरूपः स्याद् रक्तः स्थितिकरो भवेत् ।
हकारः शिवबीजं स्याच्छुद्धस्फटिकसन्निभः ।।५६।।

अणिमाद्यष्टसिद्धेश्च भुक्तिमुक्त्योः प्रदायकः ।
ळकारस्त्वात्मबीजं स्याद् रक्ताभः सर्वसिद्धिदः ।।५७।।

विद्याबीजं क्षकारः स्यात् क्षीराभश्च सुखप्रदः ।
इत्येवमधिदेवत्वफलवर्णाः क्रमेण तु ।।५८।।

अकारादिक्षकारान्ताः समासात् परिकीर्तिताः ।

स्थूलसूक्ष्माकृतिविचारः

कला जीव इति ख्याता विकला देह इष्यते ।।५९।।

कलाश्च विकलाश्चैव देही देह इति स्मृताः ।
देहिरूपं द्विधा प्रोक्तं स्थूलं सूक्ष्मं तथैव च ।।६०।।

देह एको विनिर्दिष्टः केवलं सूक्ष्ममुच्यते ।
अकारादिविसर्गान्तं केवलं तु स्वराक्षरम् ।।६१।।

तत्स्थूलमिति विज्ञेयं सूक्ष्ममध्ये स्थितिर्भवेत् ।
ककारादीनि वर्णानि विकलाश्चेति कीर्तिताः ।।६२।।

रक्त और यह स्थिति (स्थिरता) को देने वाला है। हकार शिव का बीज है। इसका स्वरूप शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल है। यह अणिमा आदि आठ सिद्धियों को तथा भोग-मोक्ष को भी देने वाला है। ळकार का देवता स्वयं आत्म-तत्त्व है। इसका वर्ण रक्त और यह सर्वसिद्धिप्रद है। क्षकार का देवता विद्यातत्त्व, दुग्धसदृश श्वेत वर्ण और यह सुख का प्रदाता है। इस तरह से यहाँ अकार से क्षकार पर्यन्त वर्णों के देवता, वर्ण और उनसे प्राप्त होने वाले फलों का संक्षेप में वर्णन किया गया है।।५५-५९।।

कला जीव के नाम से प्रसिद्ध है और विकला को देह कहा जाता है। कला और विकला को देही (जीव) और देह (शरीर) के रूप में जाना जाता है। देही (स्वराक्षर) स्थूल और सूक्ष्म के भेद से द्विविध है। देह (व्यंजन) का सूक्ष्म नामक केवल एक ही भेद है। अकार से विसर्ग पर्यन्त वर्ण केवल स्वर कहलाते हैं। इनको स्थूल माना जाता है। सूक्ष्म (व्यंजन) वर्णों के बीच में इनकी स्थिति मानी जाती है। ककार आदि वर्णों (व्यंजनों) को विकला कहा जाता है। ये अर्धमात्रा स्वरूप हैं। इन्हीं की सूक्ष्म भेद में गिनती की जाती है। इस तरह से कला को स्थूल और विकला को सूक्ष्म आकृति वाला माना जाता है।।६०-

तद्रूपं चार्धमात्रं तु सूक्ष्मरूपमिहोच्यते ।
एवं कला च विकला स्थूलसूक्ष्माकृतिर्भवेत् ।।६३।।

जीवोपाधिविचारः

कलानां तत्त्ववर्णाश्च संजीवार्णा इति स्मृताः ।
कलाहीनं तु यद्वर्णं देहं तस्य विनिर्दिशेत् ।।६४।।
देहिदेहे सुसंयोज्य जीवे जीवं न योजयेत् ।
सर्वेषां देहभेदोऽस्ति ह्यात्मभेदो न विद्यते ।।६५।।
आत्मा च जीव इत्युक्तो जीवः शिव इति स्मृतः ।
तस्माज्जीवात् परं नास्ति पश्चादन्यं न निर्दिशेत् ।।६६।।
तस्माद् वै जीवदेहेषु कलाबीजं सुयोजयेत् ।
प्रत्येकं वर्णरूपं च देवतात्मकमुच्यते ।।६७।।

मन्त्रोद्धार-बीजन्यासौ

देवानां बीजनामानि वर्णास्तत्र प्रकल्पिताः ।
तस्माद् बीजानि चोक्तानि ज्ञात्वा मन्त्रान् समुद्धरेत् ।।६८।।

६३।।

कलाओं (स्वरों) में पांच वर्ण जीव वर्ण कहे जाते है। कलाक्षरों से रहित वर्ण (व्यंजन) को देह (स्वर) से संयुक्त करना चाहिये। देही (व्यंजन) को देह (स्वर) से भली- भाँति संयुक्त किया जाता है, किन्तु जीव स्वरों में जीव को नहीं जोड़ा जाता। स्वरों की भिन्नता के रहते हुए भी आत्मा (तत्त्वों के बीजों) का भेद नहीं माना जाता।।६४-६५।।

आत्मा (बीजाक्षर) और जीव (स्वर) में कोई भेद नहीं है। जीव (स्वर) और शिव में भी कोई अन्तर नहीं है। इसीलिये स्वरों के आगे और पीछे भी कुछ जोड़ा नहीं जाता, केवल स्वर और व्यंजन के साथ कलाओं के बीजाक्षरों को जोड़ा जाता है यह भी जान लेना चाहिये कि प्रत्येक वर्ण किसी न किसी देवता का स्वरूप है।।६६-६७।।

देवताओं के नाम बीजात्मक माने गये हैं और इनके लिये वर्णों की कल्पना की गई है। इसीलिये बीजों का भी उपदेश यहाँ किया गया है। इनके स्वरूप को जान लेने पर मन्त्रों का उद्धार भी किया जा सकता है।।६८।।

देवतामूर्ति की स्थापना और लिंग की स्थापना के समय, उत्सव आदि के अवसर पर, दीक्षा के समय, पवित्रीकरण और सकलीकरण के अवसर पर बुद्धिमान् व्यक्ति को

देवतास्थापनाकाले लिङ्गे वा कौतुकेऽपि वा।
दीक्षायां प्रोक्षणे काले सकलीकरणे तथा।।६९।।
बीजानि विन्यसेद् धीमान् मूर्धादिक्रमशस्तथा।
एवमेव क्रमेणैव ज्ञात्वा वर्णान् विशेषतः।।७०।।
तत्तद्वर्णाकृतिं ध्यात्वा जपेत् सर्वार्थसिद्धिदाम्।
वर्णभेदो मया प्रोक्तश्चक्रभेदमतः शृणु।।७१।।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे वर्णभेदो नाम द्वितीयः पटलः समाप्तः ।।

मूर्धा (सिर) से लेकर पादपर्यन्त क्रमशः बीजन्यास करना चाहिये।।६९-७०।।

इसी तरह से क्रमशः वर्णों की विशेषताओं को समझ कर उन-उन वर्णों की आकृति का ध्यान और जप करे। इससे साधक को सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। हे स्कन्द ! सभी तरह से वर्णभेद को मैंने तुम्हें समझा दिया है। अब तुम चक्रभेद को सुनो।।७०-७१।।

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का यह वर्णभेद नामक द्वितीय पटल पूरा हुआ ।।२।।

❋ ❋ ❋

तृतीयः पटलः

अथातः संप्रवक्ष्यामि चक्रभेदविधिं परम्।
सर्वदेवप्रियार्थाय सर्वलोकहिताय च ।।१।।
मन्त्राणां बोधनार्थाय चक्ररूपं प्रकीर्तितम्।
सर्वदेवमयं चक्रं सर्ववर्णात्मकं विदुः ।।२।।
चक्ररूपं तु तत् साक्षाच्छिवज्ञानस्वरूपकम्।
तस्मात् तस्य स्वरूपं तु लक्षणं चाधिदैवतम् ।।३।।
वर्णन्यासक्रमं चैव संक्षेपाच्छृणु षण्मुख।

चक्रोद्धारस्थानानि

महेन्द्रे मलये सह्ये केदारे मन्दराचले ।।४।।
गङ्गातीरे तथा विन्ध्ये गह्वरे वार्धितीरके।
शिवालये गवांगोष्ठे नदीतीरतडागयोः ।।५।।
अन्येषु शुद्धदेशेषु देशिकस्य गृहेऽपि वा।
इत्युक्तेषूक्तदेशेषु चक्रमुद्धारयेत् क्रमात् ।।६।।

अब मैं चक्रभेद की श्रेष्ठ विधि को बता रहा हूँ। सभी देवताओं की प्रीति के लिये, समस्त लोक के कल्याण के लिये और मन्त्रों के उद्धार के लिये, उनके सही स्वरूप की जानकारी के लिये चक्र के स्वरूप का ज्ञान अपेक्षित है। इस चक्र में सभी देवता निवास करते हैं, सभी वर्णों की भी इसमें स्थिति रहती है। चक्र का स्वरूप साक्षात् शिव- ज्ञान का प्रतिनिधि है। इसीलिये मैं उसके स्वरूप को, लक्षण को, उसमें स्थित देवताओं को और उसमें वर्णों के विन्यास के क्रम को संक्षेप में बता रहा हूँ। हे स्कन्द ! उसे तुम सावधानी से सुनो ॥१-४॥

महेन्द्र, मलय, सह्य, केदार, मन्दराचल, विन्ध्य आदि पर्वत-शिखरों पर, गंगा नदी के तट पर, पर्वतों की गुफाओं में, समुद्र के तट पर, शिवालय में, गोशाला में, नदियों और तालाबों के किनारे तथा इसी तरह के अन्य भी पवित्र स्थलों पर अथवा दीक्षागुरु के घर पर भी — इन सभी स्थानों में से कहीं भी चक्र की रचना करनी चाहिये॥४-६॥

कल्याणप्रद, सुन्दर, समतल भूमि को चुनकर वहाँ नाभिपर्यन्त गहराई तक उसे

चक्रनिर्माणप्रकार:

भूप्रदेशे शुभे रम्ये निम्नोन्नतविवर्जिते ।
नाभिमात्रं खनित्वा कुं पांशुना पूरयेत् ततः ।।७।।

तस्योर्ध्वे मण्डपं कुर्याद् द्वादशस्तम्भसंयुतम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं रन्ध्राष्टभिरलङ्कृतम् ।।८।।

वितानध्वजसंयुक्तं दर्भमालाविराजितम् ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तं तरङ्गेणैव वेष्टितम् ।।९।।

दर्पणोदरसंकाशं गोमयेनानुलेपयेत् ।
देशिकस्तु शुचिर्भूत्वा क्षीरभुग् विजितेन्द्रियः ।।१०।।

पूर्वरात्राधिवासी च प्रभाते यन्त्रमुद्धरेत् ।
सुस्नायाचम्य विधिवत् सकलीकृतविग्रहः ।।११।।

पुण्याहं वाचयित्वा च प्रोक्षयेद् रुद्रियेण कुम् ।
रङ्गेण धातुना चैव तन्मध्ये चक्रमालिखेत् ।।१२।।

पूर्वापरगतं तत्र युग्मसूत्रं तु कारयेत् ।
विस्तारं द्वादशाङ्गुल्यं तथा वै दक्षिणोत्तरम् ।।१३।।

खोद कर उस गड्ढे को पवित्र मिट्टी से भर देना चाहिये। उसके ऊपर मण्डप का निर्माण करे। यह मण्डप बारह खंभों वाला, चार द्वारों और आठ खिड़कियों से अलंकृत होना चाहिये। इसे चंदोवा से ढँक दे और ध्वज, दर्भमाला, झालर आदि से उसे अलंकृत करे। मण्डप के भीतर की जमीन को लीप कर दर्पण के समान उसे चमकीली बना दे।।७-१०।।

आचार्य पवित्र होकर केवल दुग्ध का आहार करे। अपनी इन्द्रियों को वश में रखता हुआ पूर्वरात्रि में अधिवास-विधि का पालन करते हुए प्रातःकाल यन्त्र का उद्धार करे। चक्र का उद्धार करने से पहले नदी आदि तीर्थस्थल पर विधिपूर्वक भलीभाँति स्नान कर, सकलीकरण की प्रक्रिया से कलान्यास आदि के द्वारा बाह्य और आन्तर शुद्धि को संपन्न कर, पुण्याह वाचनपूर्वक श्रीरुद्र मन्त्रों से सारे मण्डप को शुद्ध जल छिड़क कर पवित्र करे।।१०-१२।।

नाना प्रकार के रंगों से तथा गैरिक आदि धातुओं से उस मण्डप के बीच में चक्र की रचना करनी चाहिये। रंगे हुए दो धागों की सहायता से पूर्व और पश्चिम तथा दक्षिण और उत्तर दिशाओं में बारह-बारह अंगुल की रेखाएँ खींचकर चतुष्कोण बनाना चाहिये। इस चतुरस्र भाग के बीच में एक वृत्त बना कर उसमें कर्णिका की रचना की जाती है।


क
ख
अ
आ
स
क्ष
ह

मध्यमे चतुरस्रे तु वृत्तं तत्कर्णिका भवेत्।
युग्माङ्गुलेन तद्बाह्ये त्रिवृत्तं भ्रामयेद् बुधः ।।१४।।
एकाङ्गुलेन तद्बाह्ये त्रीणि वृत्तानि कारयेत्।
बाह्ये तु मुकुलाकारान् द्वात्रिंशत् परितो लिखेत् ।।१५।।
कर्णिकायाश्च परितश्चाष्टपत्राणि वै लिखेत्।
तद्बाह्ये चाष्टपत्राणि कृत्वा चोपदलानि च ।।१६।।
अष्टदिक्षु समन्तात्तु पक्षे पक्षे गुणान् गुणान्।
तृतीयावरणे बाह्ये दलान्युपदलान्युत ।।१७।।
कर्णिकामध्यके कुर्याद् रन्ध्रं तत्सूक्ष्मकर्णिका।
तद्बाह्ये परितो लेख्यं चतुष्पत्रं सकेशरम् ।।१८।।
राजसेनैव सूत्रं तु सात्त्विकेन दलानि वै।
कर्णिकां पीतवर्णेन बीजानि तामसेन तु ।।१९।।
रक्तकृष्णासितेनैव बाह्यवृत्तत्रयं लिखेत्।
तद्बाह्ये मुकुलान् सर्वान् रक्तवर्णेन लेखयेत् ।।२०।।
चक्रन्यासो मया प्रोक्तो देवतान्यास उच्यते।

इसके बाहरी भाग में दो अंगुल जगह छोड़कर एक-एक अंगुल के अन्तर से तीन वृत्त बनाये जाते हैं तथा इन सबके बाहर चारों तरफ मुकुलित कमलों की बत्तीस आकृतियाँ बनानी चाहिये। कर्णिका के बाहर के पहले वृत्त में अष्टदल कमल, दूसरे वृत्त में आठ दल और आठ उपदल तथा तृतीय वृत्त में चारों तरफ की आठ दिशाओं में तीन-तीन दलों और उपदलों की रचना की जाती है। कर्णिका भाग के बीच में एक रन्ध्र बनाया जाता है। इसे सूक्ष्म कर्णिका कहते हैं। इसके बाहरी भाग में चतुष्पत्र कमल की तथा उसके भीतर केसरों (तन्तुओं) की रचना करनी चाहिये। इन तन्तुओं को लाल रंग से, दलों (पत्रों) को सफेद रंग से, कर्णिका को पीले रंग से और बीजों को काले रंग से रंगा जाता है। बाहरी तीन वृत्तों को भी क्रमशः लाल, काले और सफेद रंग से रंगना चाहिये। इनमें विद्यमान सभी मुकुलों को लाल वर्ण से लिखा जाता है। इस तरह से यह चक्रलेखन की प्रक्रिया पूरी होती है। अब इसमें देवताओं के न्यास का प्रकार बताया जा रहा है।।१३-२१।।

कर्णिका के मध्य में आधार शक्ति की पूजा करनी चाहिये। चतुष्पत्र कमल में अम्बिका आदि चार शक्तियाँ की तथा प्रथम आवरण में वामा आदि आठ शक्तियों की, द्वितीय आवरण में अष्टमूर्ति शिव और आठ गणेशों की तथा तृतीय आवरण में आठ विघ्नेशों, आठ लोकपालों

देवतान्यासप्रकारः

कर्णिकामध्यके पूज्या शक्तिराधाररूपिणी ।।२१।।

अम्बिकादिचतुःशक्तीश्चतुष्पत्रेषु संयजेत् ।
वामादिशक्तीश्चाष्टौ तु प्रथमावरणे यजेत् ।।२२।।

अष्टमूर्तिगणेशांश्च द्वितीयावरणे यजेत् ।
विद्येशान् लोकपालांश्च वसूंश्चैव तृतीयके ।।२३।।

बाह्यरेखात्रये पूज्यं मण्डलत्रितयं तथा ।
तत्पत्रे मुकुलाकारे वास्तुदेवान् प्रपूजयेत् ।।२४।।

गन्धपुष्पादिभिश्चैव पूर्वादीनि स्वनामतः ।
देवतान्यास एवोक्तो वर्णन्यासस्त्वथोच्यते ।।२५।।

वर्णन्यासप्रकारः

कर्णिकायां तु तन्मध्ये शिवबीजं तु विन्यसेत् ।
पूर्वपत्रे न्यसेद् बिन्दुमात्मबीजं तु दक्षिणे ।।२६।।

वारुणे सूक्ष्मनादं तु विद्याबीजं तथोत्तरे ।
एवं तत्तद्दले न्यस्येत् पञ्चरूपं षडानन ।।२७।।

और आठ वसुगणों की पूजा करनी चाहिये। बाहर की तीन रेखाओं में अग्नि, सोम और सूर्य नामक मण्डलों की उपासना की जाती है। इसके बाहर के मुकुलाकार पत्रों में वास्तुदेवों की पूजा करनी चाहिये। यह पूजा गन्ध, पुष्प आदि से की जाती है। देवताओं के नामों का उच्चारण करते हुए यह पूजा पूर्व दिशा से आरंभ हो ईशान दिशा तक क्रमशः की जाती है। इस तरह देवतान्यास का क्रम पूरा होता है। अब वर्णन्यास का क्रम कहा जा रहा है।।२१-२५।।

कर्णिका के मध्य में शिवबीज हकार का न्यास करे। कमल के पूर्व पत्र में बिन्दु का, दक्षिण पत्र में आत्मबीज ळकार का, पश्चिम पत्र में सूक्ष्म नाद का तथा उत्तर पत्र में विद्याबीज क्षकार का न्यास करे। इस तरह से हे षडानन ! कर्णिका के मध्य में और उसके चतुष्पत्रों में इन पाँच बीजाक्षरों का न्यास करना चाहिये। प्रथम आवरण के आठ, द्वितीय के सोलह और तृतीय के चौबीस दलो-उपदलों में वर्णों का विन्यास इस तरह से किया जाता है — सँ षँ शँ वँ लँ रँ यँ मँ ये आठ प्रथम आवरण के बीजाक्षर हैं। अँ आँ, इँ ईँ, उँ ऊँ, ऋँ ॠँ, ऌँ ॡँ, एँ ऐँ, ओँ औँ, अं अः ये सोलह द्वितीय आवरण के बीजाक्षर हैं। इसी तरह से कँ खँ गँ, घँ ङँ चँ, छँ जँ झँ, ञँ टँ ठँ, डँ ढँ णँ, तँ थँ दँ, धँ नँ पँ, फँ बँ भँ ये चौबीस

तत्तद्ब्राह्यदले सर्वान् क्रमाद् वर्णान् प्रविन्यसेत् ।
एकद्वित्रितये चैव एकद्वित्रितयं न्यसेत् ।।२८।।

सं च अं च समूर्तिं च कं च भावं च गं च वै ।
षं च इं च समूर्तिं च घं च भावं च चं च वै ।।२९।।

शं च उं च समूर्तिं च छं च भावं च झं च वै ।
बं च ॠं च समूर्तिं च ञं च भावं च ठं च वै ।।३०।।

लं च लृं च समूर्तिं च डं च भावं च णं च वै ।
रं च एं च समूर्तिं च तं च भावं च दं च वै ।।३१।।

यं च ओं च समूर्तिं च धं च भावं च पं च वै ।
मं च अं च समूर्तिं च फं च भावं च भं च वै ।।३२।।

एतान् वर्णांश्च पूर्वादीन् विन्यसेत् प्रथमादिषु ।
एतच्चक्रं महासेन रहस्यमतिदुर्लभम् ।।३३।।

वर्णानामधिदेवांश्च पूजयेत्तु यथाक्रमम् ।
प्रासादादीनि मन्त्राणि सर्वमस्मिन् व्यवस्थितम् ।।३४।।

चक्रपूजा-धारणफलम्

तच्चक्रं पूजयेन्नित्यं सर्वपूजासमं भवेत् ।
रोचनाकुङ्कुमोपेतैः कर्पूरागुरुचन्दनैः ।।३५।।

तृतीय आवरण के बीजाक्षर हैं। इन श्लोकों में समूर्ति शब्द सवर्ण दीर्घ स्वर का तथा भाव शब्द महाप्राण वर्ण का द्योतक है। इन तरह से इस वर्णचक्र में सभी वर्णों का विन्यास हो जाता है। इन वर्णों के विन्यास का क्रम भी देवपूजा के क्रम का ही अनुसरण करता है, अर्थात् पूर्व से लेकर ईशान कोण पर्यन्त प्रथम आवरण में एक-एक, द्वितीय आवरण में दो-दो तथा तृतीय आवरण में तीन-तीन अक्षरों का न्यास किया जाता है। हे महासेन ! वर्णचक्र का यह रहस्य बहुत कठिनाई से समझ में आता है॥२६-३३॥

वर्णों के अधिपति देवताओं की भी उसी क्रम से पूजा करे। प्रासाद आदि सभी मन्त्रों की स्थिति इस वर्णचक्र में विद्यमान है, अर्थात् सभी मन्त्रों का उद्धार इस वर्ण- चक्र की सहायता से ही किया जाता है। इस वर्णचक्र की प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये। इस पूजा से सभी देवताओं की पूजा का फल प्राप्त हो जाता है॥३४-३५॥

गोरोचन, केसर, कपूर, अगुरु और चन्दन का घोल बनाकर भूर्जपत्र पर इस वर्णचक्र को लिखकर उसका यन्त्र बना ले और उसको मस्तक पर धारण करे। ऐसा करने से साधक की सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं, उसे धन-धान्य आदि की प्राप्ति होती है। दीर्घायु, निरन्तर स्वास्थ्य, सर्वविध ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है, पुत्र-पौत्र आदि के रूप में निरन्तर वंशवृद्धि

भूर्जपत्रे लिखेच्चक्रं गुलिकां कारयेद् बुधः ।
शिरसा धारयित्वा तु सर्वकामार्थसिद्धिदम् ।। ३६ ।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रादिवर्धनम् ।
सर्वरक्षाकरं चैव सर्वव्याधिविदारणम् ।। ३७ ।।

सर्वदुःखप्रशमनं सर्वक्षुद्रनिवारणम् ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च वेतालब्रह्मराक्षसाः ।। ३८ ।।

यन्त्ररूपधरं दृष्ट्वा दूरं गच्छन्ति भीरवः ।
चक्रभेदो मया प्रोक्तो वर्गभेदमथ शृणु ।। ३९ ।।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे चक्रभेदो नाम
तृतीयः पटलः समाप्तः ।।

होती रहती है। इसके धारण करने से सभी प्रकार के दुःखों का नाश हो जाता है, सभी तरह के छोटे-मोटे उपद्रव शान्त हो जाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल, ब्रह्मराक्षस जैसे सभी दुष्ट जीव इस यन्त्र के धारण करने वालों को देखकर भय के मारे दूर भाग जाते हैं॥३५-३९॥

इस तरह से मैंने तुम्हें चक्रभेद का उपदेश किया है, अब तुम वर्गभेद को सुनो॥३९॥

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का यह चक्रभेद नामक तृतीय पटल पूरा हुआ ।। ३ ।।

***

चतुर्थः पटलः

त्रिविधो वर्गः

वर्गभेदं प्रवक्ष्यामि समासाच्छृणु षण्मुख।
वर्गस्तु त्रिविधः प्रोक्तः प्रथमः स्थितिरुच्यते॥१॥

सृष्टिवर्गो द्वितीयः स्यात् संहारस्तु तृतीयकः।
स्थितिमार्गस्त्रिवर्गः स्यात् सृष्टिरष्टविधा भवेत्॥२॥

संहारः पञ्चवर्गः स्यात् तेषां लक्षणमुच्यते।

स्थितिक्रमः

चक्रे यथा स्थिता वर्णास्तथा वै स्थितिरीरिता॥३॥

सकाराद्यष्टवर्णांश्च प्रथमावरणे लिखेत्।
प्रथमो वर्ग इत्युक्तः सात्त्विकं नामधेयकम्॥४॥

द्वितीयावरणे वर्णा अकाराद्याश्च षोडश।
द्वितीयो वर्ग इत्युक्तो राजसं संप्रकीर्तितम्॥५॥

तृतीये तु ककारादिचतुर्विंशतिवर्णकाः।
तृतीयो वर्ग इत्युक्तस्तामसं नामधेयकम्॥६॥

अब मैं वर्गभेद के स्वरूप को संक्षेप में सुना रहा हूँ, हे षण्मुख ! उसे तुम सावधानी से सुनो। वर्ग तीन प्रकार का होता है। इनमें पहला स्थितिवर्ग, दूसरा सृष्टिवर्ग और तीसरा संहारवर्ग कहलाता है। स्थितिवर्ग के पुनः तीन भेद, सृष्टिवर्ग के आठ भेद और संहारवर्ग के पाँच भेद होते हैं। क्रमशः इन सबके लक्षण यहाँ बताये जा रहे हैं॥१-३॥

वर्णचक्र में जिस रूप में वर्णों का विन्यास किया जाता है, उसे स्थितिवर्ग कहा जाता है। प्रथम आवरण में सकार आदि आठ वर्णों का विन्यास किया जाता है। यह पहला वर्ग सात्त्विक नाम से जाना जाता है। द्वितीय आवरण में अकार आदि षोडश वर्णों को लिखा जाता है। इसे द्वितीय वर्ग कहा जाता है और इसे राजस संज्ञा दी गई है। तृतीय आवरण में ककार आदि चौबीस वर्णों का विन्यास विहित है। यह तृतीय वर्ग तामस नाम से जाना जाता है। स्थितिमार्ग के त्रिविध वर्गों का यहाँ इस तरह से परिचय दिया गया है। पंचविध

वर्गभेदो मया प्रोक्तः स्थितिमार्गे प्रकीर्तितः ।
पञ्च प्रासादमन्त्रांश्च स्थितिमार्गेण चोद्धरेत् ।।७।।

सृष्टिक्रमः

एवं स्थितिक्रमः प्रोक्तः सृष्टिमार्गं ततः शृणु ।
अकारादिक्षकारान्तं वर्णानां सृष्टिरुच्यते ।।८।।
तस्मात् सृष्टिक्रमेणैव वक्ष्यन्ते चाष्टवर्गकाः ।
अवर्गं प्रथमं विद्यादैन्द्रवर्ग उदाहृतः ।।९।।
द्वितीयस्तु कवर्गश्च वह्निवर्गः प्रकीर्तितः ।
चवर्गस्तु तृतीयश्च याम्यवर्ग उदाहृतः ।।१०।।
टवर्गस्तु चतुर्थश्च नैर्ऋतो वर्ग उच्यते ।
पञ्चमस्तु तवर्गश्च वारुणो वर्ग ईरितः ।।११।।
षष्ठं विद्यात् पवर्गं च मरुद्वर्ग उदाहृतः ।
सप्तमस्तु यवर्गश्च कौबेरो वर्ग ईरितः ।।१२।।
शवर्गं चाष्टमं विद्यादीशवर्ग उदाहृतः ।
एते वै चाष्टवर्गास्ते सृष्टिमार्गे समीरिताः ।।१३।।
सदाशिवस्य मन्त्राणां पञ्चब्रह्माऽङ्गमेव च ।
सौम्यमन्त्रान् समस्तांश्च सृष्टिमार्गेण चोद्धरेत् ।।१४।।

संहारक्रमः

एवं सृष्टिक्रमः प्रोक्तः संहारं च ततः शृणु ।
क्षकारादि-अकारान्तं संहार इति कीर्तितः ।।१५।।

प्रासाद मन्त्रों का उद्धार स्थिति मार्ग से ही किया जाता है। इस तरह स्थितिक्रम का यह स्वरूप बताया गया है॥४-८॥

अब सृष्टिमार्ग का स्वरूप बताया जा रहा है। अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त विन्यस्त वर्णों के क्रम को सृष्टिमार्ग कहा जाता है। इस सृष्टिक्रम में ही वर्णों के आठ वर्गों का उपदेश शास्त्रों में किया गया है। इनमें पहला अवर्ग (१६ स्वर) ऐन्द्र वर्ग कहलाता है। दूसरा कवर्ग वह्नि वर्ग, तीसरा चवर्ग याम्य वर्ग, चौथा टवर्ग नैर्ऋत वर्ग, पाँचवां तवर्ग वारुण वर्ग, छठा पवर्ग मरुद्वर्ग, सातवाँ यवर्ग कौबेर वर्ग और आठवाँ शवर्ग ईश वर्ग कहलाता है। अभिप्राय यह है कि इन आठ वर्गों के इन्द्र, वह्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर और ईशान ये आठ आधिपति देवता हैं। सृष्टिमार्ग के ये ही आठ वर्ग हैं। सदाशिव के समस्त मन्त्रों का, पंचब्रह्म एवं षडंग मन्त्रों का और अन्य समस्त सौम्य मन्त्रों का उद्धार इस सृष्टिमार्ग के अनुसार ही किया जाता है। इस तरह से सृष्टिक्रम यहाँ वर्णित है॥९-१५॥

अब संहारमार्ग का स्वरूप सुनो। क्षकार से लेकर अकार पर्यन्त वर्णों के विपरीत

क्षकारादियकारान्तं दशार्णं प्रथमं विदुः ।
पार्थिवो वर्ग इत्युक्तो मकारादिदशाक्षरम् ।।१६।।

द्वितीयो वर्ग इत्युक्तो ह्यापोवर्ग उदाहृतः ।
णकारादिचकारान्तं तृतीयं चानलं विदुः ।।१७।।

ङकारादि-चैकारान्तं दशार्णं मारुतं विदुः ।
एकारादि-ह्यकारान्तं रुद्रार्णं व्योमवर्गकम् ।।१८।।

एते वै पञ्चवर्गाश्च संहारे तु प्रकीर्तिताः ।
समस्तान् रुद्रमन्त्रांश्च संहारेण समुद्धरेत् ।।१९।।

एवं त्रिवर्गभेदास्ते कीर्तिताश्च समासतः ।
वर्गभेदो मया प्रोक्तो वर्णनामान्यथ शृणु ।।२०।।

हकारादिवर्णपर्यायाः

चक्रे तु कर्णिकादीनि वर्णानि च यथाक्रमम् ।
वक्ष्ये नामानि संक्षेपाच्छृणु तत्त्वं शिवादिकम् ।।२१।।

नादं गुह्यं परं जीवं देही भूतं च पञ्चमम् ।
सान्तं तत्त्वान्तभूतान्तं शिवार्णं शून्यमव्ययम् ।।२२।।

क्रम को संहारमार्ग कहा जाता है। यहाँ क्षकार से लेकर यकार पर्यन्त दस वर्णों का प्रथम वर्ग बनता है। इसे पार्थिव वर्ग कहते हैं। मकार से लेकर तकार पर्यन्त दस वर्णों का द्वितीय वर्ग जलीय वर्ग कहलाता है। णकार से लेकर चकार पर्यन्त दस वर्णों के तृतीय वर्ग को वह्नि वर्ग, ङकार से लेकर ऐकार पर्यन्त दस वर्णों के चतुर्थ वर्ग को मारुत वर्ग और एकार से लेकर अकार पर्यन्त ११ वर्णों के पंचम वर्ग को व्योम वर्ग कहा जाता है। ये संहारमार्ग के पाँच वर्ग हैं। समस्त रुद्र-मन्त्रों का उद्धार इस संहारमार्ग से किया जाता है। इस तरह से त्रिविध वर्गभेद का परिचय संक्षेप में दिया गया है। इस वर्गभेद को बताने के बाद अब वर्णों के पर्यायों को यहाँ बताया जा रहा है।।१६-२०।।

वर्णचक्र के कर्णिका आदि स्थानों में शास्त्रनिर्दिष्ट पद्धति से वर्णों का विन्यास किया जाता है। आगे इनके पर्यायनामों का और इनके स्वरूप का परिचय दिया जा रहा है।।२१।।

नाद, गुह्य, पर, जीव, देही, भूत, पंचम, सान्त, तत्त्वान्त, भूतान्त, शिवार्ण, शून्य, अव्यय — ये सब शिवबीज रूपी हकार के पर्याय हैं। सूक्ष्मरूप और घोषरूप होने से इसे **नाद** कहा जाता है। चराचर समस्त भूतों के हृदय में जीव के रूप में यह छिपकर बैठा हुआ है, अतः इसे **गुह्य** कहते हैं। समस्त भावों से ऊपर विद्यमान रहने से इसे **पर** कहा जाता है। जीव शिव का ही स्वरूप है, इस अभेद का बोधक होने से हकार को **जीव** कहा जाता है। शिव से पृथ्वी पर्यन्त समस्त देहों का स्वामी होने से इसे **देही** कहा गया है। अकाय

सूक्ष्मत्वाद् घोषरूपत्वान्नादमित्यभिधीयते ।
चराचरादिभूतेषु जीवरूपं हृदि स्थितम् ।।२३।।
तस्माद् गुह्यमिदं प्रोक्तं परं भावात् परं स्थितम् ।
जीवः शिव इति ज्ञेयस्तस्माज्जीवः शिवः स्मृतः ।।२४।।
शिवाद्यवनिपर्यन्तं देहत्वाद् देहि चोच्यते ।
अकायत्वादजीवत्वाद् भूतं चेति प्रकीर्तितम् ।।२५।।
तत्त्वाद्येन क्रमाद् व्योम पञ्चतत्त्वाच्च पञ्चमम् ।
सकारस्य परं तस्मात् सान्तं चेति प्रकीर्तितम् ।।२६।।
तत् कलादिशिवान्तत्वात् तत्त्वान्तमिति कीर्तितम् ।
पृथिव्यादिक्रमाद् व्योम भूतान्तमिति कीर्तितम् ।।२७।।
सर्वव्यापिप्रभावत्वाच्छिवार्णं चेति कीर्तितम् ।
वाङ्मनोऽतीतभावत्वाच्छून्यं चेति प्रकीर्तितम् ।।२८।।
अक्षीणत्वान्महासेन अव्ययं चेति कीर्तितम् ।
पर्यायनामान्येतानि हकारस्य स्मृतानि च ।।२९।।
कर्णिकासंस्थितं बीजमिदं च परिकीर्तितम् ।
प्रवक्ष्ये केसराणां च चतुष्पत्रेषु वर्णकान् ।।३०।।

और अजीव होने से इसे **भूत** कहते हैं। तत्त्वादि, अर्थात् पृथिवी के क्रम से आकाश का पांचवाँ स्थान है और आकाश का बीज हकार ही है, इसलिये हकार को **पंचम** भी कहते हैं। सकार के आगे स्थिति होने से इसे **सान्त** तथा निवृत्ति कला से शान्त्यतीत कला पर्यन्त तत्त्वों के अर्थात् पृथ्वी से लेकर शिव पर्यन्त तत्त्वों के अन्त में स्थिति होने से **तत्त्वान्त** नाम दिया गया है। पृथिवी आदि भूतों के अन्त में व्योम की स्थिति रहने से व्योमबीज हकार को भी **भूतान्त** कहते हैं। शिव के प्रतिनिधि के रूप में इसका प्रभाव सर्वत्र व्याप्त होने से इसे **शिवार्ण** नाम दिया गया है। यह वाणी और मन के भी अगोचर है, अतः इसे **शून्य** कहते हैं। शिव-स्वरूप होने से इसका कभी क्षय नहीं होता, अतः हे महासेन ! इस हकार को **अव्यय** नाम दिया गया है। इस तरह से यहाँ ये सब शब्द हकार के पर्याय के रूप में स्मृत हैं। इस हकार- बीज की संस्थिति चक्र की कर्णिका में मानी गई है।।२२-३०।।

वर्णचक्र की केसर के चारों तरफ के चार पत्रों में स्थित वर्णों और उनके पर्यायों को अब मैं बता रहा हूँ। आधार, शक्ति, कार्य, पर और बिन्दु — ये पाँच बिन्दु के पर्याय-नाम शास्त्रों में स्मृत हैं। ळकार, आत्मबीज, देही, क्षेत्रज्ञ और भोगी — ये पाँच ळकार के पर्याय-नाम हैं। आधेय, शिव, करण, पर और नाद ये पाँच नाद के पर्यायवाची शब्द हैं। विद्या, बीज, क्षकार, कूट वर्ण और वर्गान्त — ये पाँच पर्याय क्षकार के परिगणित

चतुष्पत्रवर्णाः पर्यायाश्च

आधारशक्तिकार्याणि परं बिन्दुरनुक्रमात् ।
बिन्दोः पर्यायनामानि पञ्चैतानि स्मृतानि च ।।३१।।
ळकारमात्मबीजं च देहिक्षेत्रज्ञभोगिनः ।
एतानि पञ्चनामानि ळकारस्योदितानि च ।।३२।।
आधेयं च शिवं चैव करणं परनादकम् ।
नादपर्यायनामानि पञ्चैतानि स्मृतानि च ।।३३।।
विद्या बीजं क्षकारं च कूटवर्णं तथैव च ।
वर्गान्तं चैव पञ्चैते क्षकारस्य प्रकीर्तिताः ।।३४।।
बिन्द्वादिवेदबीजानि कर्णिकार्णा इति स्मृताः ।

सकारादिबीजानि

सकारः शक्तिबीजं स्यात् प्रथमः शुक्लधातुकः ।।३५।।
षकारो द्वितयं भानुरविमज्जादिवाकराः ।
शकारः श्री रमा लक्ष्मीरस्थि च त्रितयं विदुः ।।३६।।
वकारो वारुणोऽप्यापश्चतुर्थं मेद ईरितः ।
लकारः पञ्चमं चैन्द्रं मांसं च धरणी मही ।।३७।।
रकारश्चानलं रक्तं षष्ठं क्रोधश्च पावकः ।
यकारश्चानिलः स्नायुः सप्तमं मारुतस्तथा ।।३८।।

हैं। ऊपर वर्णित बिन्दु, ळकार, नाद और क्षकार — ये चार बीज कर्णिका की चार केसरों पर अंकित होते हैं।।३०-३५।।

सकार शक्ति का बीज है। प्रथम शुक्ल धातु (वीर्य) का यह प्रतिनिधि है। षकार भानु, रवि, दिवाकर का बीज है। द्वितीय मज्जा धातु का यह प्रतिनिधि है। शकार श्री, रमा, लक्ष्मी का बीज है। तृतीय अस्थि धातु का यह प्रतिनिधि है। वकार वारुण, जलीय बीज है। चतुर्थ मेदा धातु का यह प्रतिनिधि है। पंचम बीज लकार इन्द्रदेवता का माना गया है। मांस धातु में धरणी, मही — अर्थात् पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता रहती है। रकार अग्नि देवता का बीज है। रक्त धातु का यह प्रतिनिधि है। क्रोध और पावक का भी इससे बोध होता है। यकार वायु का बीज है। स्नायुजाल के रूप में इसे मान्यता मिली है। मारुत बीज के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है। मकार कालमृत्यु का बीज है। यह अष्टम बीज मृत्युकारक है। इस तरह से प्रथम आवरण के अष्टदल कमल में अंकित होने वाले आठ वर्णों का परिचय यहाँ दिया गया है।।३६-३९।।

मकारः कालमृत्युश्च अष्टमं मृत्युकारकम् ।
एतानि चाष्टवर्गस्य नामान्येवं स्मृतानि च ।।३९।।

अकारपर्याया:

द्वितीयं तु कला ज्ञेयं तत्कलाद्यक्षरं शृणु ।
आदिबीजं च वर्णादिर्वर्गादिश्च कलादि च ।।४०।।
स्वरादिश्चैव मात्रादिरादिप्रकृतिरेव च ।
जीवादिश्च कला मात्रा आदिश्चैव स्वरस्तथा ।।४१।।
एतत्पर्यायनामानि अकारस्य स्मृतानि वै ।
आकारादीनि शेषाणि कलाश्चेति प्रकीर्तिताः ।।४२।।
तृतीयावरणे वर्णा विकलाश्च प्रकीर्तिताः ।
वर्णानां चैव वर्गाणामेवमेवं प्रकीर्तितम् ।।४३।।
एवं हि वर्गवर्णादीन् ज्ञात्वा मन्त्रान् समुद्धरेत् ।
वर्गभेदो मया प्रोक्तो मन्त्रभेदमथ शृणु ।।४४।।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे वर्गभेदो नाम
चतुर्थः पटलः समाप्तः ।।

अब द्वितीय आवरण के षोडशदल कमल में अंकित होने वाले १६ स्वरों का परिचय सुनो। आदिबीज, वर्णादि, वर्गादि, कलादि, स्वरादि, मात्रादि, आदिप्रकृति, जीवादि, कला, मात्रा और आदिस्वर — ये सब अकार के पर्यायवाची शब्द हैं। बाकी बचे आकार आदि पन्द्रह स्वर कला के नाम से जाने जाते हैं।।४०-४२।।

तृतीय आवरण के चौबीस दल वाले कमल में अंकित होने वाले वर्णों को विकला के नाम से जाना जाता है। इनमें ककार से लेकर भकार पर्यन्त वर्णों का न्यास किया जाता है। वर्णों और वर्गों का परिचय इसी तरह से यहाँ दिया गया है। इन सब वर्णों और वर्गों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरान्त ही मन्त्रों का उद्धार करना चाहिये। प्रस्तुत पटल में वर्गों के भेदों का विवरण दिया गया है। अब आगे के पाँचवें पटल में मन्त्रों के विविध भेदों का परिचय दिया जा रहा है।।४३-४४।।

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्यतन्त्र का यह वर्गभेद नामक
चतुर्थ पटल पूरा हुआ ।।४।।

❋❋❋

पञ्चमः पटलः

मन्त्रमाहात्म्यम्

अथातः संप्रवक्ष्यामि मन्त्रभेदविधिं परम्।
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वकामार्थसिद्धिदम्।।१।।

मन्त्रस्तु देवतारूपं मन्त्ररूपमिदं जगत्।
परार्धकोटिमन्त्राश्च शिववक्त्राद् विनिर्गताः।।२।।

कर्षणादिक्रियाः सर्वा मन्त्रेणैव प्रकीर्तिताः।
तस्मान्मन्त्रः क्रियार्थः स्याद् विना मन्त्रं क्रिया न च।।३।।

मन्त्रेण देवता स्थाप्या मन्त्रेण यजनादयः।
स्नानं मन्त्रेण कर्तव्यं मन्त्रेणाहुतितर्पणे।।४।।

प्रायश्चित्तं तु मन्त्रेण दीक्षा मन्त्रेण चैव हि।
अणिमादीनि मन्त्रेण सालोक्यादिपदं तथा।।५।।

मन्त्रेण पातकादीनि मुच्यन्ते सर्वजन्मिनाम्।
सर्वमन्त्रक्रियाश्चैव मन्त्रं शृणु षडानन।।६।।

अब मैं श्रेष्ठ मन्त्रभेदविधि का वर्णन करूँगा। मन्त्र भोग और मोक्ष को देने वाला है। सभी कामनाओं को पूरा करने वाला है और अर्थ का भी प्रदाता है, अर्थात् मन्त्र की सहायता से सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। मन्त्र देवता का ही स्वरूप है और यह सारा जगत् भी मन्त्रस्वरूप ही है। भगवान् शिव के मुख से करोड़ों परार्ध मन्त्र निकले हैं। भूमिकर्षण से लेकर प्रतिमास्थापन पर्यन्त समस्त क्रियाकलाप मन्त्रों की सहायता से ही संपन्न होते हैं। इस तरह से सारे धार्मिक कार्यों के सम्पादन के लिये मन्त्रों का उपदेश होता है, अतः मन्त्र के बिना कोई क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। मन्त्रों की सहायता से देवताओं की स्थापना की जाती है और मन्त्रों की सहायता से ही पूजा आदि की जाती है। स्नान भी मन्त्रोच्चारपूर्वक होता है और आहुति देते समय या तर्पण करते समय भी मन्त्रोच्चार आवश्यक है। प्रायश्चित्त भी मन्त्र की सहायता से सम्पन्न होता है और दीक्षा भी। अणिमा आदि सिद्धियों की तथा सालोक्य आदि पदों की प्राप्ति भी मन्त्रों की सहायता से ही होती है। मन्त्र की सहायता

मन्त्रनिर्वचनम्

मननं सर्वपक्षेषु त्राणं संसारसागरात्।
मननत्राणधर्मित्वाद् मन्त्र इत्यभिधीयते ।।७।।

आह्वानतः स्वनाम्ना तु जनः संनिहितो भवेत्।
तथा मन्त्रप्रयोगेण तत्र संनिहितः शिवः ।।८।।

तस्माद् मन्त्रं महासेन रहस्यं न प्रकाशय।
पूर्वोक्तदेशे कृत्वा तु मण्टपं लक्षणान्वितम् ।।९।।

गोमयेनानुलिप्याथ मण्टपं भूषयेत् ततः।
अस्त्रमन्त्रेण संप्रोक्ष्य तन्मध्ये चक्रमालिखेत् ।।१०।।

कर्णिकां केसरांश्चैव दलान्युपदलानि वै।
क्रमेणैव तु संलिख्य चाधारादीन् प्रपूजयेत् ।।११।।

तन्मध्ये शिवपूजादीन् प्रकुर्यात् पूर्ववत् क्रमात्।
तच्चक्रे स्थितिमार्गेण प्रासादं तु समुद्धरेत् ।।१२।।

से समस्त प्राणियों के पाप धुल जाते हैं। अधिक क्या? समस्त कार्यकलाप मन्त्र की सहायता से ही सिद्ध होते हैं। हे षडानन! इसीलिये मैं तुमको मन्त्र का उपदेश कर रहा हूँ। तुम सावधानी से सुनो॥१-६॥

मन्त्र की सहायता से सभी विषयों के चिन्तन की सामर्थ्य प्राप्त होती है और इसकी सहायता से ही प्राणी संसार-सागर से त्राण भी प्राप्त करता है। इस तरह से मनन से त्राण करने वाला होने से इसे **मन्त्र** कहते हैं। मन्त्र पद की यह निरुक्ति सभी शास्त्रों में मिलती है। अपने नाम से पुकारे जाने पर जैसे कोई भी मनुष्य पुकारने वाले के पास चला आता है, उसी तरह से मन्त्र का उच्चारण करने पर भगवान् शिव का सांनिध्य प्राप्त होता है। इसीलिये हे महासेन! गुरुमुख से प्राप्त मन्त्र के रहस्य को प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥७-९॥

तृतीय पटल में वर्णित किसी एक स्थान पर सभी लक्षणों से समन्वित मण्टप का निर्माण कर गोबर से उस स्थान को लीपकर उसे सभी प्रकार से अलंकृत करना चाहिये। मण्टप-स्थान को अस्त्र मन्त्र से प्रोक्षित कर उसके बीच में चक्र को लिखना चाहिये। कर्णिका, केसर, दल, उपदल इन सबका क्रमशः निर्माण कर उनमें क्रमशः आधारशक्ति आदि का पूजन करे। तृतीय पटल में वर्णित पद्धति से सभी आवरण देवताओं का पूजन भी क्रमशः करना चाहिये॥९-१२॥

प्रासादमन्त्रनिर्वचनम्

प्राशब्देन शिवो ज्ञेयः साशब्दः शक्तिरुच्यते ।
तत्स्वरूपं तु दःशब्दस्त्रिवर्णमभिधीयते ।।१३।।

दानेन मुक्तिदो यस्मात् तस्मात् प्रासाद उच्यते ।
अज्ञान-ज्ञान-विज्ञेयं त्रिविधं विद्यते क्रमात् ।।१४।।

अन्धकारवदज्ञानं दीप्तिवज्ज्ञानमुच्यते ।
ज्ञेयं भास्करवत् प्रोक्तमिति ज्ञानं विशिष्यते ।।१५।।

शिवज्ञानात् परं ज्ञानं नहि लोकेषु विद्यते ।

पञ्चधा प्रासादः

प्रासादः पञ्चधा प्रोक्तस्तद्भेदो वक्ष्यतेऽधुना ।।१६।।

शुद्धो मूलं तथा तत्त्वमादिरात्मेति पञ्चधा ।
प्रासादा उदितास्तेषां शुद्धप्रासाद उच्यते ।।१७।।

१. शुद्धप्रासादः

शुद्धः शिव इति प्रोक्तस्तस्माच्छुद्धः प्रकीर्तितः ।
नादाख्यं यत्परं बीजमादिस्वरसमन्वितम् ।।१८।।

इतना कर लेने के उपरान्त इस वर्णचक्र की सहायता से चतुर्थ पटल में वर्णित स्थितिवर्ग के क्रम से प्रासाद मन्त्र का उद्धार करना चाहिये। यहाँ १. शुद्ध प्रासादः **प्रा** शब्द शिव का, **सा** शब्द शक्ति का और **द** शब्द इस दोनों का वाचक है। यह मन्त्र अपने जापक को शिव और शक्ति के स्वरूप का बोध कराता है, अतः इसे **प्रासाद** मन्त्र कहते हैं। अज्ञान, ज्ञान और विज्ञेय ये तीन स्थितियाँ साधक के सामने रहती हैं। अज्ञान की स्थिति अन्धकार के सदृश, ज्ञान की प्रकाश के सदृश और ज्ञेय की स्थिति भास्कर के समान होती है। इनमें ज्ञान की ही श्रेष्ठता मानी गई है। इस प्रकार शिव को चिच्छक्ति के द्वारा ही जाना जाता है। अतः प्रासाद मन्त्र के ज्ञान की अपनी विशेषता है। इस संसार में शिवज्ञान से श्रेष्ठ अन्य कोई भी ज्ञान नहीं है। इस शिवज्ञान की प्राप्ति का प्रमुख साधन प्रासाद मन्त्र है। यह प्रासाद मन्त्र पाँच प्रकार का है। अब मैं उन भेदों का वर्णन करूँगा॥१२-१६॥

पंचविध प्रासाद मन्त्रों के नाम शुद्ध, मूल, तत्त्व, आदि और आत्मा हैं। क्रमशः इनका स्वरूप बताया जा रहा है। इनमें शुद्ध प्रासाद मन्त्र का उद्धार पहले किया जा रहा है। शुद्ध शब्द शिव का बोधक है। शिवज्ञान का प्रथम साधन यह प्रथम प्रासाद मन्त्र भी इसीलिये शुद्ध नाम से जाना जाता है। नाद नामक जो श्रेष्ठ बीज हकार है, उसे आदिस्वर अकार से संयोजित करने पर शुद्ध प्रासाद मन्त्र का स्वरूप बनता है। सभी प्राणियों के हृदय में इसका नदन होता रहता है। यह मुक्ति को देने वाला, परम दिव्य और सभी प्रकार की सिद्धियों

तच्छुद्धमिति विज्ञेयं सर्वभूतव्यवस्थितम् ।
मुक्तिदं परमं दिव्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।१९।।

तद् विदित्वा महासेन देशिकः पाशहा भवेत् ।
शुद्धप्रासाद इत्युक्तो मूलप्रासाद उच्यते ।।२०।।

२. मूलप्रासादः

सर्वेषामेव तत्त्वानां मूलं शिव इति स्मृतः ।
तस्माद् मूलमिति प्रोक्तं मूलमन्त्रस्तदुच्यते ।।२१।।

षष्ठं त्रयोदशान्तं च पञ्चमे विनियोजयेत् ।
शिवशक्तिसमायुक्तः शिवमन्त्र इति स्मृतः ।।२२।।

शिवमेकं विजानीयाद् मन्त्रमूर्तिं परं शिवम् ।
नादः किरीट इत्युक्तो बिन्दुर्वक्त्रमुदाहृतः ।।२३।।

हकारो देह इत्युक्तो द्वे शृङ्गे च भुजौ तथा ।
वह्निं पादद्वयं विद्यान्मन्त्रमूर्तिरुदाहृता ।।२४।।

स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव त्रिविधं तु प्रकीर्तितम् ।
स्थूलं वर्णाकृतिं विद्यात् सूक्ष्मं तच्छब्द उच्यते ।।२५।।

का प्रदाता है। हे महासेन ! इस शुद्धप्रासाद मन्त्र के स्वरूप को जानकर आचार्य शिष्यों के सभी प्रकार के पाशों को काट डालने में समर्थ हो जाता है।।१७-२०।।

शुद्धप्रासाद मन्त्र का स्वरूप यहाँ बताया गया है। अब मूलप्रासाद का स्वरूप कहा जा रहा है। सभी छत्तीस तत्त्वों का मूलकारण भगवान् शिव को बताया गया है। भगवान् शिव के वाचक इस प्रासाद मन्त्र को भी इसीलिये मूलप्रासाद मन्त्र कहा जाता है। वर्णों के स्थितिवर्ग के आधार पर षष्ठ रेफ और त्रयोदश स्वर ओकार को पंचम हकार के साथ संयुक्त कर उसे शिवशक्ति, अर्थात् बिन्दुनाद से विभूषित करने से **ह्रौं** यह मूलप्रासाद मन्त्र बनता है। एक ही भगवान् शिव सर्वत्र व्याप्त हैं। परमशिव मन्त्रस्वरूप ही हैं। नाद इनका किरीट और बिन्दु मुख माना गया है। हकार इनका देह है। ओकार से इनकी भुजाएँ बनती हैं और वह्निबीज रेफ से दो चरण। इस तरह से मूलप्रासाद मन्त्र परमशिव की मन्त्रमूर्ति है।।२०-२४।।

भगवान् शिव का स्थूल, सूक्ष्म और पर नामक त्रिविध स्वरूप है। स्थूल स्वरूप वर्ण की आकृति धारण करता है और सूक्ष्म शब्द के रूप में उच्चरित होता है। अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त सभी वर्ण पांचभौतिक माने गये हैं। पाँच-पाँच, अर्थात् दस के क्रम से ये पाँच भूतों के लिये प्रयुक्त होते हैं। अन्ततः इन वर्णों की संख्या पचास हो जाती है। वर्णमाला के मध्य में स्थित पंचम बीज हकार को भगवान् का परस्वरूप माना जाता है। पंचभूतों

अकारादिक्षकारान्तं पाञ्चभौतिकमुच्यते ।
पञ्च पञ्च प्रयुञ्जीत पञ्चाशद्वर्णमीरितम् ।।२६।।
अन्तर्यत् पञ्चमं बीजं तत्परं परिकीर्तितम् ।
पाञ्चभौतिकसंबन्धो जीवाधार इति स्मृतः ।।२७।।
एवं ज्ञात्वा तु मन्त्रज्ञः सर्वपापात् प्रमुच्यते ।
एवं वै पञ्चभूतत्वं जीवप्रासाद उच्यते ।।२८।।
ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तं जगद्योनिश्चराचरम् ।
भूतं भव्यं भविष्यद् यत् प्रासादे सर्वमुद्भूतम् ।।२९।।
मूलप्रासाद इत्युक्तस्तत्त्वप्रासाद उच्यते ।

३. तत्त्वप्रासादः

तत्त्वं चैवादिबीजं च तत्त्वान्ते विनियोजयेत् ।।३०।।
कार्यकारणसंयुक्तं सर्वतत्त्वात्मकं विदुः ।
तत्त्वप्रासाद इत्युक्त आदिप्रासाद उच्यते ।।३१।।

४. आदिप्रासादः

आद्यं चतुर्दशं चैव जीवान्ते विनियोजयेत् ।
आधाराधेयसंयुक्तमादिबीजमिहोच्यते ।।३२।।

से संबद्ध ये वर्ण ही जीव नामक हकार के पुर्यष्टक हैं। इस तरह से शिव के इन स्थूल, सूक्ष्म और पर स्वरूपों को भलीभाँति समझ लेने वाला मन्त्रोपासक सभी पापों से मुक्त हो जाता है। पंचभूतों से इनकी संबद्धता के कारण ही इनको जीवप्रासाद कहा जाता है। ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र तृण पर्यन्त नाना योनियों में विभक्त यह सारा चराचरात्मक जगत् भूत, भविष्यत् और वर्तमान रूप में प्रासाद मन्त्र का ही स्वरूप है, सब कुछ इसी प्रासाद मन्त्र से उद्भूत है, अतः इसे मूलप्रासाद कहा जाता है। मूलप्रासाद का स्वरूप बता देने के बाद अब तत्त्वप्रासाद का स्वरूप कहते हैं।।२५-३०।।

वर्णों के स्थितिवर्ग के आधार पर तत्त्व (पंचम) वर्ण लकार के साथ आदिबीज अकार को जोड़ कर उन्हें तत्त्वान्त हकार से संयुक्त करना चाहिये। इनको कार्यकारण, अर्थात् बिन्दु-नाद से विभूषित करने पर **ह्लँ** यह सर्वतत्त्वात्मक तत्त्वप्रासाद का स्वरूप बनता है। अब आदिप्रासाद का स्वरूप बताया जा रहा है।।३०-३१।।

वर्णों की ऊपर बताई स्थितिवर्ग की पद्धति से आद्य वर्ण सकार है। इसको चतुर्दश स्वर औकार के साथ जीवान्त हकार से संयुक्त कर उसे आधार और आधेय, अर्थात् बिन्दुनाद से सुशोभित करने पर **ह्सौँ** यह आदिप्रासाद मन्त्र उद्भूत होता है। आदिशक्ति के अपने बीज सकार का यहाँ संयोग होने से इसे आदिप्रासाद कहा जाता है। शिव और शक्ति की अभिन्नता

आदिशक्तेः स्वबीजेन संयोगाददिरुच्यते ।
एतच्छिवमयं बीजं सर्वसिद्धिकरं परम् ।।३३।।

आदिप्रासाद इत्युक्त आत्मप्रासाद उच्यते ।

५. आत्मप्रासादः

भूतान्तं तु समुद्धृत्य आदिप्रकृतिसंयुतम् ।।३४।।

प्रथमं तु समुद्धृत्य आदिप्रकृतिसंयुतम् ।
तयोर्मध्यगता शक्तिरात्मबीजमिति स्मृतम् ।।३५।।

हृत्सरोरुहमध्ये तु संस्थितं सर्वकारणम् ।
आत्मप्रासाद इत्युक्तो जीवप्रासाद उच्यते ।।३६।।

एते वै शिवबीजत्वाच्छिवमन्त्रा इति स्मृताः ।
शुद्धादि चात्मपर्यन्तं स्थितिमार्गेण चोद्धृताः ।।३७।।

पञ्चधा सादाख्यो मन्त्रः

शिवमन्त्रो मया प्रोक्तः सदाशिवमथ शृणु ।
सादाख्यं सौम्यरूपत्वात् सृष्टिमार्गेण चोद्धरेत् ।।३८।।

के आधार पर यह शिवमय बीज सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला श्रेष्ठ बीज है। आदिप्रासाद मन्त्र के स्वरूप को बताने के बाद अब आत्मप्रासाद मन्त्र का उद्धार किया जा रहा है।।३२-३४।।

भूतान्त इकार का उद्धार कर उसे आदिप्रकृति, अर्थात् प्रकृतिस्वर के प्रथम वर्ण अकार से संयुक्त करे। तदुपरान्त स्थितिवर्ग की पद्धति से प्रथम वर्ण सकार के साथ षोडश स्वर विसर्ग को संयोजित करे। इन दोनों के बीच में शक्तिबीज बिन्दु को जोड़ देने पर **हंस** इस तरह से आत्मप्रासाद मन्त्र का स्वरूप बनता है। इसीको जीवप्रासाद भी कहते हैं। इन सभी मन्त्रों में शिवबीज हकार का संयोग होने से ये शिवमन्त्र कहलाते हैं। शुद्धप्रासाद से लेकर आत्मप्रासाद पर्यन्त इन सभी प्रासाद मन्त्रों का उद्धार स्थिति- मार्ग की पद्धति से किया गया है।।३४-३७।।

ऊपर शिवमन्त्रों के उद्धार की पद्धति बताई गई है। अब सदाशिव मन्त्रों के उद्धार की पद्धति सुनो। सादाख्य मन्त्र सौम्य स्वरूप के माने जाते हैं, अतः इनका उद्धार सृष्टि-मार्ग के अनुसार किया जाता है। यह सादाख्य मन्त्र मोक्षद, अभिवृद्धि, काम्य, शान्तिक और पौष्टिक के भेद से पंचविध है। इनमें पंचाक्षर मन्त्र मोक्षद, षडक्षर मन्त्र अभिवृद्धि देने वाला, अष्टाक्षर कामद, नवाक्षर शान्तिद और दशाक्षर मन्त्र पौष्टिक माना गया है। इस तरह

मोक्षदश्चाभिवृद्धिश्च काम्यशान्तिकपौष्टिकाः ।
पञ्चाक्षरो मोक्षदः स्यादभिवृद्धिः षडक्षरः ।।३९।।

काम्यमष्टाक्षरं विद्याच्छान्तिकं तु नवाक्षरम् ।
पौष्टिकं दशबीजं स्याद् मन्त्राः पञ्चविधाः स्मृताः ।।४०।।

पञ्चाक्षरमन्त्रः

ईशे तुरीयमुद्धृत्य चैन्द्रे चतुर्दशान्वितम् ।
परापरसमायुक्तं शक्तिं चादिकलान्विताम् ।।४१।।

सोमान्तं द्विकलोपेतं सोमादित्वादिसंयुतम् ।
अयं पञ्चाक्षरो मन्त्रः परमो मुक्तिदो भवेत् ।।४२।।

हौं स शिवाय

षडक्षरमन्त्रः

भूतान्तं तु समुद्धृत्य चतुर्दशकलान्वितम् ।
कार्यकारणसंयुक्तमीशाद्यं त्रिकलायुतम् ।।४३।।

ईशानान्तं(द्यं) समुद्धृत्य ऐन्द्रानलसमायुतम् ।
सोमान्तं द्विकलोपेतं सोमादित्वादिसंयुतम् ।।४४।।

से सदाशिव मन्त्र के ये पाँच भेद शास्त्रों में वर्णित हैं।।३८-४०।।

ईश (अष्टम) वर्ग के चतुर्थ वर्ण हकार का उद्धार कर उसे ऐन्द्र (प्रथम) वर्ग के चतुर्दश स्वर औकार से तथा परापरसंज्ञक नाद-बिन्दु से संयुक्त करने पर **हौं** उद्धार होगा। इसके साथ शक्तिसंज्ञक सकार को आदिकला अकार से संयुक्त करे। तब ईशान वर्ग के आदि वर्ण शकार को तीसरे स्वर इकार से मिलाकर उद्धार करने से शिकार तथा सोम (कौबेर) नामक सप्तम वर्ग के अन्तिम वर्ण वकार को दूसरी कला आकार से तथा इसी सोम वर्ग के आदि अक्षर यकार को आदिवर्ण अकार से संयुक्त करने पर **हौं स शिवाय** यह पंचाक्षर मन्त्र बनेगा। यह परम मुक्ति को देने वाला है।।४१-४२।।

भूतान्त हकार का उद्धार कर उसे चतुर्दश स्वर औकार तथा कार्यकारण, अर्थात् बिन्दु-नाद से संयुक्त कर देने पर **हौं** का उद्धार होगा। तब ईश (अष्टम) वर्ग के आदि अक्षर शकार को तीसरी कला इकार से, सोम (सप्तम) वर्ग के अन्तिम वर्ण वकार को दूसरी कला आकार से तथा इसी तरह से सोम वर्ग के प्रथम अक्षर यकार को आदि कला अकार से संयुक्त करे। इसके आगे वर्णान्त नकार को आदि अकार से, मारुत नामक षष्ठ वर्ग के अन्तिम वर्ण मकार को कला (षोडश स्वर) से संयुक्त करने पर **हौं शिवाय नमः** यह

वर्णान्तं चादिसंयुक्तं मारुतान्तं कलान्वितम् ।
एवं षडक्षरः प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।।४५।।

हौं शिवाय नमः
अष्टाक्षरमन्त्रः

[गुह्यं चतुर्दशोपेतं शिवशक्तिसमायुतम् ।
भूतान्तमादिप्रकृति कार्यकारणसंयुतम् ।।]
ईशे तृतीयवर्णश्च प्रथमस्वरसंयुतः ।
शक्तिर्मात्रादिसंयुक्ता वारुणीद्वितृतीयकम् ।।४६।।
तृतीयं चास्थिसंयुक्तं सोमान्तं द्विकलायुतम् ।
अनिलादिकलोपेतमेवमष्टाक्षरं विदुः ।।४७।।
एवमष्टाक्षरः प्रोक्तः सर्वसम्पत्प्रदायकः ।

हौं हं स सदाशिवाय
नवाक्षरमन्त्रः

भूतान्तं तु समुद्धृत्य षट्पञ्चत्रिकलायुतम् ।।४८।।
कार्यकारणसंयुक्तं गुह्यं मात्रादिबिन्दुयुक् ।
शक्तिर्मात्रादिसंयुक्ता सप्तमान्तं द्विसंयुतम् ।।४९।।

षडक्षर मन्त्र उद्धृत होता है। यह षडक्षर मन्त्र सभी प्रकार की सिद्धियों का प्रदाता है।।४३-४५।।

गुह्य हकार को चतुर्दश कला औकार एवं शिव-शक्ति, अर्थात् बिन्दु-नाद से संयुक्त करे। इसके बाद भूतान्त हकार को प्रकृति के प्रथम स्वर अकार और कार्य-कारण (बिन्दु-नाद) से संयुक्त करे। इसके आगे ईश (अष्टम) वर्ग के तृतीय वर्ण सकार को प्रथम स्वर अकार से जोड़े। तब शक्तिबीज सकार को आदि मात्रा अकार से, वारुण पंचम वर्ग के तृतीय अक्षर दकार को द्वितीय मात्रा आकार से, अस्थिबीज शकार को तृतीय स्वर से, सोम (कौबेर) सप्तम वर्ग के अन्तिम अक्षर वकार को दूसरी कला आकार से और अनिल वर्ण यकार को आदिकला अकार से संयुक्त करने पर **हौं हं स सदाशिवाय** यह अष्टाक्षर मन्त्र उद्धृत होता है। यह मन्त्र सभी प्रकार की संपत्ति को देने वाला है।।४५-४८।।

पहले भूतान्त हकार का उद्धार करे और उसको छ, पाँच और तीन, अर्थात् चोदहवीं कला औकार से विभूषित करे। इसको कार्यकारण (बिन्दु-नाद) से अलंकृत करने पर **हौं** इस प्रथम अक्षर का स्वरूप बनेगा। बाद में गुह्य हकार को प्रथम मात्रा अकार और बिन्दु से संयुक्त करे। इससे **हं** का उद्धार होगा। शक्तिबीज सकार को आदिमात्रा अकार से, सप्तमान्त

अनिलान्तं त्वादियुक्तं लयाद्यं वरुणादिकम् ।
तयोर्मध्यगतं यान्तमादिबीजेन संयुतम् ।।५०।।
सप्तमाद्यं समुद्धृत्य षट्पञ्चमकलायुतम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं नवाक्षरमिदं विदुः ।।५१।।
एतद् वै परमं बीजं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।

हौं हैं सैं मौं लैं क्षैं रैं तैं यैं

दशाक्षरमन्त्रः

परात्परं समुद्धृत्य चैन्द्रे चतुर्दशान्वितम् ।।५२।।
कार्यकारणसंयुक्तं शक्तिबीजसमन्वितम् ।
ईशे तृतीयकं चाथोपरि द्वितीयजीवयुक् ।।५३।।
सप्तमान्तं द्विसंयुक्तं षष्ठान्तं षट्कलान्वितम् ।
भूतान्तं तु समुद्धृत्य वह्निं तस्योपरि न्यसेत् ।।५४।।
पञ्चमान्तकलोपेतं भान्तमेकारसंयुतम् ।
पञ्चपञ्चममादि स्यात् षष्ठान्तं सप्तमादिकम् ।।५५।।

मकार को द्वितीय मात्रा आकार से, अनिल बीज रकार के आगे के लकार को अकार से, लयाद्य क्षकार, वरुण का आदि तकार, क्षकार और तकार के बीच में रकार, सप्तम वर्ग का आदिबीज यकार का उद्धार करे। इस यकार को छः और पाँच, अर्थात् एकादश कला एकार तथा इन सबको बिन्दु और नाद से संयुक्त करे। इस तरह से **हौं हैं सैं मौं लैं क्षैं रैं तैं यैं** — इस नवाक्षर मन्त्र का स्वरूप बनता है। यह नवाक्षर मन्त्र अतीव श्रेष्ठ मन्त्र है। यह सभी प्रकार की सिद्धियों का प्रदाता है॥४८-५२॥

पहले परात्पर हकार का उद्धार कर उसे प्रथम ऐन्द्र वर्ग की चौदहवीं मात्रा से संयुक्त कर इसे नाद-बिन्दु से अलंकृत करे। इस तरह से **हौं** बीज का उद्धार होता है। शक्ति- बीज सकार को ईश वर्ग के तृतीय अक्षर सकार से संयुक्त कर इसके ऊपर द्वितीय मात्रा आकार को संयोजित करे। तब सप्तमान्त वकार को द्वितीय कला आकार से, षष्ठान्त मकार को छठी कला ऊकार से विभूषित करे। इसके आगे भूतान्त हकार का उद्धार कर उसे वह्निबीज रकार और पंचमान्त, अर्थात् छठी कला ऊकार से संयोजित करे। भान्त मकार को एकार से, पंचम वर्ग के पंचम वर्ण नकार, षष्ठान्त मकार और सप्तम वर्ग के आदि वर्ण यकार का उद्धार करे। इन सबको बिन्दु-नाद से संयोजित करने पर दशाक्षर मन्त्र का — **हौं सैं सौं वौं मूँ हॄँ मैं नैं मैं यैं** — यह स्वरूप बनता है॥५२-५६॥

बिन्दुनादसमायुक्तं दशबीजमिहोच्यते ।
हौँ सँ साँ वाँ मूँ हूँ मेँ नँ मँ यँ
एते पञ्चविधाः प्रोक्ता मन्त्राः पञ्चाक्षरादयः ।।५६।।
सदाशिवमिदं प्रोक्तं महेशं शृणु षण्मुख ।

त्रिविधो महेशमन्त्रः

महेशं रुद्रमूर्तित्वात् संहारेण समुद्धरेत् ।।५७।।
तस्य भेदस्त्रिधा ज्ञेयः सृष्टिस्थितिलयास्तथा ।
भूमौ तृतीयमुद्धृत्य सलिलाद्यसमन्वितम् ।।५८।।
भूमौ नवार्णकं विद्यादम्बरे तु षडक्षरम् ।
आधाराधेयसंयुक्तं सृष्टिबीजमिति स्मृतम् ।।५९।।

हँ मँ रँ ऊँ

स्थितिमन्त्रः

पृथिव्यां तु तृतीयं स्याद् व्योमान्तेन समन्वितम् ।
तद्वर्गे तुर्यमुद्धृत्य सुरमार्गान्तबिन्दुयुक् ।।६०।।
लयाद्यमनलं चैव पार्थिवान्तेन संयुतम् ।
व्योमषष्ठसमायुक्तं कार्यकारणसंयुतम् ।।६१।।

इस तरह से पंचाक्षर आदि पाँच मन्त्रों का स्वरूप यहाँ बताया गया है। ये सदाशिव देव के पंचविध मन्त्र हैं। अब हे षण्मुख ! महेश के मन्त्रों का स्वरूप सुनो।।५६-५७।।

महेश का स्वरूप रौद्र माना गया है। अत: उनके मन्त्रों का उद्धार संहारवर्ग की पद्धति से किया जाता है। सृष्टि, स्थिति और लय के भेद से महेश के मन्त्र तीन प्रकार के हैं। भूमिवर्ग का तृतीय वर्ण हकार है। सलिलवर्ग का प्रथम वर्ण मकार है। भूमिवर्ग का नवम अक्षर रकार और व्योमवर्ग का छठा अक्षर ऊकार है। इन चारों वर्णों को आधार और आधेय (बिन्दु और नाद) से संयुक्त करने पर महेश का प्रथम सृष्टि-बीज **ह् म् र् ऊँ** इस तरह से बनेगा।।५७-५९।।

पृथिवीवर्ग के तृतीय अक्षर हकार को व्योमवर्ग के अन्तिम अक्षर अकार से संयुक्त किया जाता है। इसके आगे शक्ति, सकार को रखकर इसे व्योमवर्ग के अन्तिम वर्ण अकार और बिन्दु से संयुक्त कर उसे लयाद्य सकार, रेफ और पार्थिवान्त यकार से संयुक्त करे। अन्त में व्योमवर्ग के छठे अक्षर ऊकार को कार्यकारण=बिन्दु और नाद से संयुक्त करने पर महेश के स्थिति-बीज का उद्धार होता है। उसका स्वरूप यह है—**हँ सँ क्षँ रँ यँ ऊँ**।।६०-६२।।

स्थितिबीजमिदं प्रोक्तं संहारश्चाधुनोच्यते ।

हैं सैं क्षैं रैं यैं ऊँ

संहारमन्त्रः

वह्निवर्गे तृतीयार्णं व्योमान्तेन समन्वितम् ।।६२।।

शिवशक्तिसमायुक्तं पृथिव्यादि समुद्धरेत् ।

द्वितीयाद्यं समुद्धृत्य तेजो वै पार्थिवान्तकम् ।।६३।।

अन्तरिक्षान्तसंयुक्तं कार्यकारणसंयुतम् ।

व्योम्नः षड्वर्णकं बिन्दुं संहारमिति कीर्तितम् ।

डँ क्षँ मँ रँ यँ ऊँ

महेशबीजमाख्यातं शक्तिबीजमथ शृणु ।।६४।।

पञ्चधा शक्तिमन्त्राः

शक्तिबीजं समुद्धृत्य द्विकलावह्निसंयुतम् ।

बिन्दुनादसमायुक्तं शक्तिबीजमिदं परम् ।।६५।।

स्त्रां

प्रथमा शक्तिरित्युक्ता द्वितीया शक्तिरुच्यते ।

नादाद्यं तु समुद्धृत्य षष्ठं मायासमन्वितम् ।।६६।।

बिन्दुनादसमायुक्तं

अब महेश मन्त्र के संहार-बीज का स्वरूप बताया जा रहा है। वह्निवर्ग के तृतीय वर्ण डकार को व्योमान्त अकार और बिन्दु-नाद से संयुक्त करे। तब पृथिवीवर्ग के प्रथम अक्षर क्षकार, द्वितीय वर्ग के आदिबीज मकार, वह्नि बीज रकार, पार्थिववर्ग के अन्तिम अक्षर यकार को रखकर व्योम वर्ग के छठे वर्ण ऊकार को बिन्दु से विभूषित करे। **डँ क्षँ मँ रँ यँ ऊँ** यह महेश का संहार-बीज है।।६२-६४।।

महेश के त्रिविध बीजों का उद्धार-क्रम ऊपर बताया गया है। अब शक्ति के पंचविध बीजों की उद्धार-पद्धति क्रमशः बताई जा रही है। शक्तिबीज सकार, द्वितीय कला आकार, वह्नि रकार को बिन्दु और नाद से संयुक्त करने पर **स्त्राँ** यह प्रथम शक्ति बीज उद्धृत होगा।।६४-६५।।

अब द्वितीय शक्तिबीज का उद्धार बताया जा रहा है। नाद (हकार) के आदि वर्ण सकार और षष्ठ रेफ को मायाबीज ईकार तथा बिन्दु-नाद से संयुक्त करने पर **स्त्रीं** यह द्वितीय शक्तिबीज बनेगा।।६५-६६।।

द्वितीय शक्तिबीज के बाद तृतीय शक्तिबीज का उद्धार इस तरह से होगा — तत्त्वान्त हकार के आदि वर्ण सकार को धरा बीज ऊकार, वह्निबीज रेफ तथा बिन्दु-नाद से संयोजित

स्त्रीं

द्वितीया शक्तिरीरिता ।

तत्त्वान्ताद्यं धरावह्निबिन्दुनादसमन्वितम् ।।६७।।

तृतीया शक्तिरित्युक्ता

स्त्रूं

जीवाद्यं वह्निसंयुतम् ।

कलाद्वादशकाभेद्यं बिन्दुनादसमायुतम् ।।६८।।

चतुर्थी शक्तिरित्युक्ता

स्त्रैं

भूताद्यं वह्निसंयुतम् ।

चतुर्दशकलोपेतं बिन्दुनादसमन्वितम् ।।६९।।

पञ्चमी शक्तिरित्युक्ता शिवाङ्गमिव चोद्धृतम् ।

स्त्रौं

एतासां पञ्चशक्तीनामुमाशक्त्यादिरेव च ।।७०।।

गौरीबीजम्

गणवर्णं समुद्धृत्य वह्निमायासमन्वितम् ।

बिन्दुनादसमायुक्तं गौरीबीजमिदं परम् ।।७१।।

करने पर **स्त्रूं** यह तृतीय शक्तिबीज बनेगा।।६६-६७।।

जीव (हकार) के आदिबीज सकार को वह्निबीज रेफ, बारहवीं कला ऐकार और बिन्दु-नाद से संयोजित करने पर **स्त्रैं** यह चतुर्थ शक्तिबीज उद्धृत होगा।।६७-६८।।

भूत (हकार) के आदि अक्षर सकार को वह्निबीज रेफ और चतुर्दश कला औंकार के साथ बिन्दु-नाद से संयुक्त करने पर **स्त्रौं** यह पंचम शक्तिबीज उद्धृत होगा। शिवांग- बीजों के समान इन शक्ति-बीजों का भी उद्धार किया जाता है। इन पाँच शक्तिबीजों की उमा, अम्बिका, गणानी, ईश्वरी और मनोन्मनी ये पाँच अधिदेवता हैं।।७०।।

गण-वर्ण गकार का उद्धार कर उसे वह्निबीज रेफ और मायाबीज ईकार से संयुक्त करे। इसे बिन्दु-नाद से अलंकृत कर देने पर **ग्रीं** इस श्रेष्ठ गौरीबीज का स्वरूप बनेगा। इसी तरह से अन्य शक्तियों के भी नाम के प्रथम अक्षर को कार्यकारण (बिन्दु-नाद) से संयुक्त कर देने पर उन-उन देवियों के बीजाक्षरों का उद्धार किया जा सकता है।।७१-७२।।

ग्रीं

अन्यासां चैव शक्तीनां स्वनामाद्यक्षरेण तु।
कार्यकारणसंयुक्तं सर्वेषां शक्तिरुच्यते ।।७२।।

मन्त्रन्यासः

मन्त्र एवं समाख्यातो मन्त्रन्यासमथ शृणु।
लिङ्गस्य स्थापनाकाले तत्त्वमन्त्रांश्च विन्यसेत् ।।७३।।

कुम्भेष्वन्तर्गतान् मन्त्रान् लिङ्गवत् पूरितान् बहिः ।
तयोर्योगे क्रियावस्था सुप्रतिष्ठेति कीर्तिता ।।७४।।

प्राणप्रकृतियोगं तु ज्ञात्वा स्थापनमाचरेत् ।
प्राणो मन्त्र इति प्रोक्तः प्रकृतिर्मूर्तिरीरिता ।।७५।।

मन्त्रमूर्तिसुसंयोगः शिवसांनिध्यकारणम् ।
तस्माद् वै मन्त्रं मूर्तिं च लिङ्गमध्ये तु विन्यसेत् ।।७६।।

मूर्ध्नि प्रविन्यसेच्छुद्धं मूलं वै सूत्रमध्यके ।
तत्त्वं तु दक्षिणे प्रोक्तमादिं वामे तु विन्यसेत् ।।७७।।

आत्मानं सूत्रमूले तु विन्यसेच्च विचक्षणः ।
मन्त्रन्यासो मया प्रोक्तस्तत्त्वन्यासमथ शृणु ।।७८।।

इस प्रकार विविध मन्त्रों के उद्धार की पद्धति यहाँ बताई गई है। अब इन मन्त्रों के न्यास की पद्धति को सुनो। लिंग की स्थापना करते समय पंचब्रह्म (शिव) मन्त्रों का न्यास करे। लिंग की प्रतिष्ठा के समय मन्त्रों का न्यास कुंभों में भी करे। लिंग और कुंभ के भीतर मन्त्रों के सविधि न्यास से ही प्रतिष्ठाविधि सुचारु रूप से संपन्न होती है। प्राण और प्रकृति के संयोग को सुचारु रूप से समझ लेने के बाद ही आचार्य को प्रतिष्ठा करनी चाहिये। यहाँ मन्त्र को प्राण और मूर्ति को प्रकृति कहा जाता है। मन्त्र और मूर्ति का सम्यक् योग होने से ही वहाँ शिव का सांनिध्य प्राप्त होता है। अतः आचार्य को चाहिये कि लिंग के मध्य में मन्त्र और मूर्ति का सम्यक् योग संपादित करे। लिंग के मस्तक पर शुद्धप्रासाद का, सूत्र के मध्य में मूलप्रासाद का, दक्षिण भाग में तत्त्वप्रासाद और वाम भाग में आदिप्रासाद का न्यास किया जाता है। बुद्धिमान् आचार्य आत्मप्रासाद मन्त्र का न्यास सूत्र के मध्य में करे। इस तरह से यहाँ मन्त्रन्यास का प्रकार बताया गया है। इसके बाद अब तत्त्वन्यास का क्रम बताया जा रहा है।।७३-७८।।

कर्मसादाख्य का न्यास पूर्व दिशा में, कर्तृसादाख्य का दक्षिण दिशा में, मूर्तसादाख्य का पश्चिम में और अमूर्तसादाख्य का उत्तर दिशा में न्यास करे। ऊर्ध्व भाग में शिवसादाख्य

तत्त्वन्यास:

कर्मेशं पुरतो न्यस्य कर्तुः सव्ये तु विन्यसेत् ।
मूर्तं च पश्च(श्चि)मे न्यस्य त्वमूर्तं चोत्तरे न्यसेत् ।।७९।।

ऊर्ध्वे तु शिवसादाख्यं पञ्चतत्त्वानि विन्यसेत् ।
पञ्चमूर्तिमयं देवं सर्वकारणकारणम् ।।८०।।

अष्टत्रिंशत्कलोपेतं ध्यात्वा तु सकलीकृतम् ।
आवाहयेत् ततो देवं पञ्चाक्षरविधानतः ।।८१।।

षडक्षरेण मन्त्रेण स्थापयेच्च विचक्षणः ।
अष्टाक्षरेण मन्त्रेण संनिधीकरणं कुरु ।।८२।।

निरोधयेद् नवार्णेन दशबीजेन पूजयेत् ।
पाद्यगन्धादिकं दद्याद् ब्रह्माङ्गैः सह बुद्धिमान् ।।८३।।

सकलस्थापनाकाले तद्बीजं हृदि विन्यसेत् ।
सृष्टिमूर्तौ न्यसेत् सृष्टिं स्थितिमूर्तौ न्यसेत् स्थितिम् ।।८४।।

संहारे संहृतिं बीजं विन्यसेत्तु विचक्षणः ।
शक्तीनां स्थापनाकाले तद्बीजं हृदि विन्यसेत् ।।८५।।

का न्यास करना चाहिये। पंचतत्त्वों के न्यास की यही पद्धति है॥७९-८०॥

इस प्रकार पंचमूर्तिस्वरूप, सभी कारणों के भी कारण, अड़तीस कलाओं के न्यास के कारण सकलीकृत भगवान् का ध्यान करे। बाद में पंचाक्षर मन्त्र की सहायता से शिव का आवाहन, षडक्षर मन्त्र की सहायता से स्थापन, अष्टाक्षर मन्त्र से संनिधीकरण, नवाक्षर मन्त्र से संनिरोधन कर दशार्ण मन्त्र से पूजन करे। ब्रह्मांग मन्त्रों से बुद्धिमान् आचार्य पाद्य, गन्ध आदि समर्पित करे। भगवान् शिव के सकल स्वरूप की स्थापना करते समय उन-उन देवताओं के बीज-मन्त्रों की अपने हृदय में स्थापना करे। बुद्धिमान् आचार्य सृष्टिमूर्ति में सृष्टिबीज का, स्थितिमूर्ति में स्थितिबीज का और संहारमूर्ति में संहारबीज का न्यास करे। शक्तियों की स्थापना करते समय उन-उन शक्तियों के बीजों का हृदय में न्यास किया जाता है। प्रतिष्ठा के समय की जाने वाली क्रिया (कर्मकाण्ड) को शरीर और मन्त्र को जीव (प्राण) कहा जाता है। यह क्रिया और मन्त्र का सम्यक् प्रयोग ही लिंग अथवा मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा करने में समर्थ होता है, भगवान् शिव का सांनिध्य उससे प्राप्त होता है। अत: आचार्य को चाहिये कि वह जीव और शरीर के तत्त्व को भलीभाँति समझ लेने के उपरान्त ही प्रतिष्ठा के समय किये जाने वाले मन्त्रन्यास, तत्त्वन्यास आदि समस्त कर्मकाण्डों को संपादित करे।

क्रिया-मन्त्रमाहात्म्यम्

क्रिया शरीरमित्युक्तं मन्त्रो जीव इति स्मृतः ।
क्रियामन्त्रप्रयोगो हि शिवसांनिध्यकारणम् ।।८६।।

तस्माज्जीवं शरीरं च ज्ञात्वा सर्वं समाचरेत् ।
मन्त्रभेदो मया प्रोक्तः प्रणवं च ततः शृणु ।।८७।।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे मन्त्रभेदो नाम
पञ्चमः पटलः समाप्तः ।।

इस तरह से मन्त्र के विविध भेदों का यहाँ वर्णन किया गया है। अब आगे के पटल में प्रणव के स्वरूप को बताया जा रहा है। हे षण्मुख ! उसे तुम सावधानी से सुनो।।८०-८७।।

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का यह मन्त्रभेद
नामक पंचम पटल पूरा हुआ ।।५।।

❋❋❋

षष्ठः पटलः

प्रणवस्वरूपम्

अथ प्रणवभेदं तु प्रवक्ष्यामि समासतः ।
सर्वपापहरं चैव मुक्तिदं परमं नृणाम् ।।१।।
प्रणवं सर्वदेवाख्यं सर्वदेवमयं विदुः ।
सर्वेषां चैव मन्त्राणां प्रणवः प्राण उच्यते ।।२।।

पञ्चभेदः प्रणवः

प्रणवः पञ्चभेदः स्यात् तद्भेदं शृणु षण्मुख ।
साकल्यं शाम्भवं सौख्यं सावश्यं सायुज्यं तथा ।।३।।
एते वै पञ्चभेदास्तु पञ्चवक्त्रेषु चोद्भृताः ।

पञ्चदेवात्मकः प्रणवः

अकारश्च उकारश्च मकारश्च त्रिधा भवेत् ।।४।।
त्रितयान्तर्गतं नादं चतुर्थं मुक्तिकारणम् ।
अकारो दक्षिणांशः स्याद्वामांशः स्यादुकारकः ।।५।।

मन्त्रों के विविध भेदों का वर्णन करने के बाद अब मैं प्रणव के भेदों का संक्षेप में स्वरूप बताऊँगा। यह प्रणव-मन्त्र साधकों के सभी पापों का नाश करने वाला एवं श्रेष्ठ मुक्ति को देने वाला है। प्रणव सर्वदेवमय है, सभी देवता इसमें निवास करते हैं। यह प्रणव-मन्त्र अन्य सभी मन्त्रों का प्राण-स्वरूप है।।१-२।।

इस प्रणव मन्त्र के पाँच भेद होते हैं। हे षण्मुख ! इन भेदों को तुम सुनो। इनके नाम साकल्य, शांभव, सौख्य, सावश्य और सायुज्य हैं। प्रणव के ये पाँच भेद भगवान् पंचब्रह्म शिव के पाँच मुखों से आविर्भूत हुए हैं।।३-४।।

अकार, उकार और मकार ये इसके तीन स्थूल स्वरूप हैं। इन तीनों वर्णों के अन्तर्गत स्थित चतुर्थ अक्षर नाद (हकार) मुक्ति का कारण माना गया है। अकार इसका दक्षिण अंश और उकार वाम अंश है। मकार की स्थिति मध्य में मानी गई है। इस तरह से ये तीनों

मकारो मध्यदेशः स्यात्तस्मात् त्रिः प्रणवात्मकम् ।
हकारस्तस्य मध्ये तु संस्थितः सर्वकारणम् ।।६।।
अकारं ब्रह्मदैवत्यमुकारं विष्णुदैवतम् ।
मकारं रुद्रदैवत्यमोङ्कारं च सदाशिवम् ।।७।।
नादं शिवमयं विद्यात् पञ्चदेवात्मकं विदुः ।
अकारोकारसंयोगादोकारस्वर उच्यते ।।८।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म वदन्ति शिवयोगिनः ।

१. साकल्यप्रणवः

पञ्चमं प्रथमोपेतं तृतीयान्तर्गतं परम् ।।९।।
साकल्यमिति विज्ञेयं पूर्ववक्त्रे तु जायते ।

अ उ म् ओं

२. शाम्भवप्रणवः

आदिबीजं चतुर्थान्तं भान्तं भूतान्तसंयुतम् ।।१०।।
चतुर्थस्वरसंयुक्तं शाम्भवं दक्षिणानने ।

अ उ म ह ईं

३. सौख्यप्रणवः

वर्गादि पञ्चमं चैव षष्ठान्तं जीवसंयुतम् ।।११।।

वर्ण मिलकर प्रणव का स्वरूप धारण करते हैं। इन सबके के मध्य में हकार की स्थिति है, जो सभी का मूलकारण है।।५-६।।

यहाँ अकार के ब्रह्मा, उकार के विष्णु और मकार के देवता रुद्र हैं। ओङ्कार के देवता सदाशिव और नाद नामक हकार के देवता शिव हैं। इस तरह से प्रणव के ये पाँच अवयव पंचदेवात्मक हैं। अकार और उकार के संयोग से ओकार स्वर की निष्पत्ति होती है। शिवयोगी ॐ इस रूप में निष्पन्न प्रणव का एकाक्षर ब्रह्म के रूप में वर्णन करते हैं।।७-९।।

पंचम वर्ण उकार के पहले प्रथम वर्ण अकार को रखने के उपरान्त मध्य स्थित मकार का उद्धार करने से साकल्य नामक प्रणव का स्वरूप बनता है। यह पंचवक्त्र सदाशिव के पूर्व मुख से आविर्भूत है।।१०।।

आदिबीज अकार के बाद चतुर्थान्त अर्थात् पंचम उकार, भान्त अर्थात् मकार और भूतान्त हकार को रखने बाद इसके आगे चतुर्थ स्वर ईकार को संयोजित करने पर **अ उ म ह ईं** यह शांभव प्रणव का स्वरूप बनता है। यह पंचमुख शिव के दक्षिण मुख का प्रतिनिधि माना जाता है।।११।।

वर्ग का आदि अकार, पंचम उकार, षष्ठ वर्ग का अन्तिम मकार को जब जीवसंज्ञक

तृतीयस्वरसंयुक्तं सौख्यं वै पश्चिमानने ।

अ उ म ह ईं

४. सावश्यप्रणवः

अकारं पञ्चमं चैव मकारं तत्त्वबीजकम् ।।१२।।

एकादशकलोपेतं सावश्यं सौम्यवक्त्रके ।

अ उ म ह एँ

५. सायुज्यप्रणवः

आदिप्रकृतिवर्णं च पञ्चमं च षडन्तकम् ।।१३।।

गुह्यं चतुर्दशोपेतं सायुज्यं चोर्ध्ववक्त्रके ।

अ उ म ह औं

१. साकल्यस्वरूपम्

साकल्यं रक्तवर्णं स्यात् छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितम् ।।१४।।

ऋषिः सनत्कुमारस्तु पार्थिवं भूतमुच्यते ।
तत्त्वं कर्मेश इत्युक्तमीशानश्चाधिदैवतम् ।।१५।।
मात्राचतुर्भिः संयुक्तं सर्वसिद्धिकरं परम् ।

२. शाम्भवस्वरूपम्

शाम्भवं त्वञ्जनप्रख्यं त्रिष्टुप्छन्दः प्रकीर्तितम् ।।१६।।

हकर से संयुक्त कर तृतीय स्वर के साथ रखा जाता है, तो **अ उ म ह ईं** यह सौख्य नामक प्रणव का स्वरूप बनता है। यह पंचमुख शिव के पश्चिम मुख का प्रतिनिधि माना जाता है॥१२॥

अकार, पंचम स्वर उकार, मकार और तत्त्वबीज हकार के साथ एकादश कला एकार को संयुक्त करने पर **अ उ म ह एँ** यह सावश्य प्रणव का स्वरूप बनता है। यह पंचमुख शिव के उत्तर मुख का प्रतिनिधि माना जाता है॥१३॥

प्रकृति स्वर का प्रथम वर्ण अकार, पंचम स्वर उकार, षष्ठ वर्ग का अन्तिम वर्ण मकार, गुह्य हकार जब चतुर्दश स्वर औकार से संयुक्त होता है, तब **अ उ म ह औं** यह सायुज्य नामक प्रणव का स्वरूप बनता है। यह पंचमुख शिव के ऊर्ध्व मुख का प्रतिनिधि माना जाता है॥१४॥

इनमें साकल्य प्रणव का वर्ण लाल और छन्द अनुष्टुप् बताया गया है। इसके ऋषि सनत्कुमार और भूत पृथिवी है। तत्त्व कर्मसादाख्य और अधिपति देवता ईशान हैं। चार मात्राओं से संयुक्त यह साकल्य प्रणव सभी श्रेष्ठ सिद्धियों को देने वाला है॥१५-१६॥

शांभव प्रणव का वर्ण अंजन के समान गहरा काला है। छन्द त्रिष्टुप्, ऋषि भारद्वाज

भारद्वाज ऋषिर्ज्ञेयः सलिलं भूतमुच्यते ।
तत्त्वं कर्तृसमाख्यातमीश्वरस्त्वधिदैवतम् ।।१७।।
पञ्चमात्रासमोपेतं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।

३. सौख्यस्वरूपम्

सौख्यं गोक्षीरवर्णं स्याद् बृहतीच्छन्द ईरितम् ।।१८।।
विश्वामित्र ऋषिर्ज्ञेयस्तेजो भूतमिति स्मृतम् ।
समूर्तं तत्त्वमित्युक्तं ब्रह्मा स्यादधिदैवतम् ।।१९।।
चतुर्मात्रासमायुक्तं सर्वसम्पत्करं परम् ।

४. सावश्यस्वरूपम्

सावश्यं कुङ्कुमाभं स्याज्जगतीच्छन्द ईरितम् ।।२०।।
गौतमोऽस्य ऋषिर्ज्ञेयो मारुतं भूतमुच्यते ।
अमूर्तं तत्त्वमित्युक्तमीशस्तस्याधिदैवतम् ।।२१।।
पञ्चमात्रासमोपेतं सर्ववश्यकरं परम् ।

५. सायुज्यस्वरूपम्

सायुज्यं स्फटिकाभं स्याज्जगतीच्छन्द ईरितम् ।।२२।।

और भूत जल है। कर्तृसादाख्य तत्त्व और अधिपति देवता ईश्वर हैं। यह पांच मात्राओं वाला शांभव प्रणव सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला है।।१७-१८।।

सौख्य नामक प्राणव गाय के दूध के समान श्वेत वर्ण का है। इसका छन्द बृहती बताया गया है। विश्वामित्र ऋषि और भूत तेजस्तत्त्व है। समूर्तसादाख्य तत्त्व और इसके आधिदेवता ब्रह्मा हैं। चार मात्राओं वाला यह सौख्य नामक प्रणव सभी प्रकार की सम्पत्तियों को देने वाला है।।१८-२०।।

सावश्य प्रणव केसर के समान पीत वर्ण का माना गया है। इसका छन्द जगती और ऋषि गौतम हैं। भूत मारुत और तत्त्व अमूर्तसादाख्य है। इसके अधिपति देवता ईश हैं। पाँच मात्राओं वाला यह सावश्य प्रणव सभी को वश में करने में समर्थ है।।२०-२२।।

सायुज्य प्रणव स्फटिक के समान श्वेत वर्ण का है। इसका छन्द जगती है। ऋषि अगस्त्य और भूत आकाश माना गया है। शिवसादाख्य तत्त्व और इसके अधिपति सदाशिव हैं। पांच मात्राओं वाला यह सायुज्य प्रणव सभी प्रकार की अभीष्ट वस्तुओं का प्रदाता है।।२२-२४।।

सभी पंचप्रणव वर्णों में शिवबीज हकार को ही प्रणव के रूप में मान्यता मिली हैं।

अगस्त्योऽस्य ऋषिर्ज्ञेयो व्योम भूतमुदाहृतम् ।
शिवाख्यं तत्त्वमित्युक्तमधिदैवं सदाशिवम् ।।२३।।

पञ्चमात्रासमोपेतं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।

प्रणवस्य शिवबीजत्वम्

प्रणवः सर्ववर्णानां शिवबीजमिति स्मृतः ।।२४।।

बिन्दुनादप्रकारेण प्रणवाकृतिरुच्यते ।
सृष्टिस्थितिनिमित्ताय उच्चारणमधोमुखम् ।।२५।।

साकल्यादीनि पञ्चैते क्रमेण परिकीर्तिताः ।
उक्तः प्रणवभेदश्च ब्रह्मभेदमथ शृणु ।।२६।।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे प्रणवभेदो नाम
षष्ठः पटलः समाप्तः ।।

बिन्दु और नाद के संयोग से प्रणव की आकृति स्पष्ट होती है। सृष्ट पदार्थ के संरक्षण के निमित्त मुमुक्षुजन निश्चल मन से इनका उच्चारण करें॥२४-२५॥

इस तरह से यहाँ इस छठे पटल में साकल्य आदि के रूप में प्रणव के पाँच भेदों का वर्णन किया गया है। अब अगले सातवें पटल में ब्रह्म के भेदों का वर्णन होगा, उसे तुम सुनो॥२६॥

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का यह प्रणवभेद
नामक षष्ठ पटल पूरा हुआ ।।६।।

❋ ❋ ❋

सप्तमः पटलः

ब्रह्मपञ्चकम्

अथ वक्ष्ये विशेषेण ब्रह्मभेदविधिं परम् ।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मेति परिकीर्तितम् ।।१।।
ब्रह्मतत्त्वमिति ज्ञेयं भवेत् तद् ब्रह्म पञ्चधा ।
पञ्चब्रह्मप्रकारेण पञ्चविंशतिभेदकम् ।।२।।
एभिर्भेदैर्युतं पञ्चविंशातिस्तत्त्वसंयुतम् ।
इत्येतत् पञ्चभेदत्वाद् ब्रह्मपञ्चकमीरितम् ।।३।।
मूर्तिब्रह्म भवेत् पूर्वं तत्त्वब्रह्म द्वितीयकम् ।
भूतब्रह्म तृतीयं स्यात् पिण्डब्रह्म चतुर्थकम् ।।४।।
पञ्चमं च कलाब्रह्म ब्रह्मपञ्चकमीरितम् ।
पञ्चानां ब्रह्मणामेषां लक्षणं वक्ष्यतेऽधुना ।।५।।

१. मूर्तिब्रह्म

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च मूर्तयः प्रणवाधिपाः ।
एतत्प्रणवरूपं तु मूर्तिरूपमुदाहृतम् ।।६।।

प्रणव के भेदों का निरूपण करने के बाद अब ब्रह्म के भेदों का परिचय दिया जा रहा है। यह स्वयं बृहत् है और समस्त जगत् का उपबृंहण करता है, अतः इसे ब्रह्म कहा जाता है।।१।।

यही ब्रह्मतत्त्व का लक्षण है। यह ब्रह्म पहले पाँच प्रकार का होकर पंचब्रह्म कहलाता है। फिर इसीके पचीस भेद हो जाते हैं। इन पचीस भेदों में विभक्त हुआ ब्रह्म पचीस तत्त्वों से संयुक्त हो जाता है। इनमें पाँच भेद ही मुख्य हैं, इसीलिये शास्त्रों में पंचब्रह्म के नाम से ये प्रसिद्ध हैं।।२-३।।

ब्रह्मतत्त्व के इन पाँच भेदों में पहला मूर्तिब्रह्म, दूसरा तत्त्वब्रह्म, तीसरा भूतब्रह्म, चौथा पिण्डब्रह्म और पांचवाँ कलाब्रह्म कहलाता है। ब्रह्मपंचक के नाम से ये प्रसिद्ध हैं। अब मैं इनमें से प्रत्येक का लक्षण बताने जा रहा हूँ।।४-५।।

ॐकार के तीन अक्षरों की ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर नामक तीन अधिपति-मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों के कारण प्रणव को *मूर्तिब्रह्म* कहा जाता है। इस मूर्तिब्रह्म के साकल्य आदि पाँच भेद हो जाते हैं।।६-७।।

साकल्यादिस्तु यत्पञ्च मूर्तिब्रह्म तदुच्यते ।

२. तत्त्वब्रह्म

एतेषां चैव तत्त्वानां शिवतत्त्वं प्रभुः स्मृतम् ।।७।।

एतच्छिवमयं बीजं शिवार्णं चेति कीर्तितम् ।
तस्माच्छुद्धादि चात्मान्तं तत्त्वब्रह्म प्रकीर्तितम् ।।८।।

३. भूतब्रह्म

प्रथमं मांसबीजं स्याद् द्वितीयं मेदसो भवेत् ।
तृतीयं षष्ठबीजं स्याच्चतुर्थं सप्तमं तथा ।।९।।
पञ्चमं पञ्चमं विद्यात् पाञ्चभौतिकमुच्यते ।
मांसं वै पार्थिवं बीजं मेदसो ह्याप उच्यते ।।१०।।
षष्ठं तेजो विनिर्दिष्टं सप्तमं मारुतात्मकम् ।
पञ्चमं व्योमबीजं स्याद् भूतब्रह्मेति कीर्तितम् ।।११।।

४. पिण्डब्रह्म

सप्तके प्रकृतौ वर्णे तुरीयं पञ्चमं त्यजेत् ।
शेषेषु पञ्चवर्णेषु पञ्चमं सह योजयेत् ।।१२।।

प्रणवाक्षरों में शिवतत्त्व की प्रधानता है, अर्थात् अकार-उकार-मकार नामक समस्त वर्णों की उत्पत्ति हकार से होती है। अत: शिवस्वरूप यह हकार ही शिवबीज के नाम से प्रसिद्ध है। शुद्धप्रासाद से आत्मप्रासाद पर्यन्त विभक्त यह शिवबीज हकार ही *तत्त्व- ब्रह्म* कहलाता है।।७-८।।

अब तृतीय भूतब्रह्म का स्वरूप बताया जा रहा है — प्रथम भूत पृथिवी का मांस बीज है। द्वितीय भूत जल का मेदस्, तृतीय भूत अग्नि का षष्ठ, चतुर्थ भूत वायु का सप्तम बीजाक्षर माना गया है। पंचम भूत आकाश का बीजाक्षर पंचम है। इस प्रकार ये पाँच पृथिवी आदि पांच भूतों के बीजाक्षर माने गये हैं।।९-१०।।

यहाँ मांस पद से पार्थिव बीज लकार का, मेदस् से जलीय बीज वकार का, षष्ठ पद से तैजस बीज रेफ का, सप्तम पद से वायु के बीज यकार का और पंचम से आकाश के बीज हकार का ग्रहण किया जाता है। शास्त्रों में *भूतब्रह्म* के नाम से ये वर्णित हैं।।१०-११।।

अब चतुर्थ पिण्डब्रह्म का स्वरूप बताया जा रहा है—सोलह स्वरों में सात ह्रस्व स्वर प्रकृति वर्ण कहलाते हैं। इनमें से चतुर्थ ऋकार और पंचम ऌकार को छोड़कर बचे हुए पाँच स्वरों को पंचम हकार से संयुक्त कर दे। फिर इन सबको बिन्दु और नाद से

बिन्दुनादसमायुक्तं पञ्चार्णानामनुक्रमात् ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि समासाच्छृणु षण्मुख ।।१३।।
सद्योजातं तथा पूर्वं वामेदवं द्वितीयकम् ।
अघोरं च तृतीयं स्याच्चतुर्थं पुरुषं तथा ।।१४।।
ईशानं पञ्चमं विद्यादेवमाख्याः प्रकीर्तिताः ।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तान् स्वनामपदमध्यगान् ।।१५।।
नमस्कारान्तसंयुक्तान् सद्यादीन् योजयेत् क्रमात् ।
शिवार्णे जीववर्णानां संयोगात् पिण्डमुच्यते ।।१६।।
कर्मेशः पिण्डरूपत्वात् पिण्डब्रह्मेति कीर्तितम् ।

५. कलाब्रह्म

ईशानः पुरुषश्चैवमघोरो वामदेववकः ।।१७।।
सद्योजातश्च पञ्चैते कलाब्रह्म प्रकीर्तिताः ।
ईशानस्य कलाः पञ्च पुरुषस्य चतुष्कलाः ।।१८।।
अघोरस्य कलाश्चाष्टौ वामदेवे त्रयोदश ।
सद्यस्याष्टकला ज्ञेया अष्टत्रिंशत्कलाः स्मृताः ।।१९।।

संयोजित कर दे। अभिप्राय यह है कि पाँच हकारों को अकार आदि पाँच ह्रस्व वर्णों और बिन्दु-नाद से संयुक्त कर दे। तब उनका स्वरूप यह होगा हँ हिँ हुँ हेँ होँ। ये ही पिण्डब्रह्म के पाँच बीज हैं। हे षण्मुख स्कन्द ! अब तुम इनके नाम संक्षेप में सुनो॥१२-१३॥

सद्योजात पहला, वामदेव दूसरा, अघोर तीसरा, पुरुष चौथा और ईशान पांचवाँ नाम है। इन नामों के पहले प्रणव और बीजाक्षर, बाद में चतुर्थी विभक्ति से संयुक्त अपना अपना नाम और अन्त में नमः पद को यहाँ संयुक्त किया जाता है। तब उनका स्वरूप यह बनेगा — ॐ हं सद्योजाताय नमः, ॐ हिं वामदेवाय नमः, ॐ हुं अघोराय नमः, ॐ हें तत्पुरुषाय नमः, ॐ हों ईशानाय नमः॥१४-१६॥

शिवबीज हकार के साथ अकार आदि पाँच जीव-वर्णों का संयोग होने से यह कर्मेश तत्त्व पिण्डब्रह्म के नाम से शास्त्रों में वर्णित है॥१६-१७॥

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात नामक पाँच ब्रह्ममन्त्र ही कला- ब्रह्म कहलाते हैं। इनमें ईशान मन्त्र की पाँच, तत्पुरुष की चार, अघोर की आठ, वामदेव की तेरह और सद्योजात मन्त्र की आठ — कुल मिलाकर इनकी अड़तीस कलाएँ मानी गई हैं॥१७-१९॥

प्रथम ईशान मन्त्र की 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' यह पहली कला, 'ईश्वरः सर्वभूतानाम्'

अष्टत्रिंशत्कला:

ईशानकला:

ईशानः सर्वविद्यानां प्रथमं परिकीर्तितम्।
ईश्वरः सर्वभूतानां द्वितीयं परिकीर्तितम्।।२०।।

ब्रह्माधिपतिरित्येव ब्रह्मणोऽधिपतिस्तथा।
ब्रह्मेतीदं तृतीयं स्याच्छिवो मेऽस्तु चतुर्थकम्।।२१।।

सदाशिवोमिति ज्ञेयं पञ्चमं परिकीर्तितम्।
एता ईशानरूपाश्च पञ्चसंख्याः प्रकीर्तिताः।।२२।।

तत्पुरुषकला:

तत्पुरुषाय विद्महे प्रथमं परिकीर्तितम्।
महादेवाय धीमहि तन्नो चेति द्वितीयकम् ।।२३।।

रुद्रस्तृतीयमित्युक्तं चतुर्थं तु प्रचोदयात्।
एवं तत्पुरुषस्यैव चतस्रश्च कलाः स्मृताः।।२४।।

अघोरकला:

अघोरेभ्यस्तथा पूर्वं घोरेभ्यश्च द्वितीयकम्।
घोरघोरस्तृतीयं स्यात् तरेभ्यश्च चतुर्थकम्।।२५।।

सर्वतः पञ्चमं विद्यात् षष्ठं सर्वमुदाहृतम्।
सर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु सप्तमं चेति कीर्तितम्।।२६।।

अष्टमं रुद्ररूपेभ्यश्चाघोरस्याष्टकं स्मृतम्।

वामेदवकला:

प्रथमं वामदेवाय ज्येष्ठायेति द्वितीयकम्।।२७।।

यह दूसरी कला, 'ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा' यह तीसरी कला, 'शिवो मे अस्तु' यह चौथी कला और 'सदाशिवोम्' यह पाँचवीं कला मानी गई है। इस तरह से ये पाँच कलाएँ ईशान-स्वरूप मानी गई हैं।।२०-२२।।

द्वितीय तत्पुरुष मन्त्र की 'तत्पुरुषाय विद्महे' यह पहली कला, 'महादेवाय धीमहि तन्नो' यह दूसरी, 'रुद्रः' यह तीसरी और 'प्रचोदयात्' यह चौथी कला है।।२३-२४।।

तृतीय अघोर मन्त्र की 'अघोरेभ्यः' यह पहली, 'अथ घोरेभ्यः' यह दूसरी, 'घोरघोर' यह तीसरी, 'तरेभ्यः' यह चौथी, 'सर्वतः' यह पांचवीं, 'सर्व' यह छठी 'सर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु' यह सातवीं और 'रुद्ररूपेभ्यः' यह आठवीं कला है।।२५-२७।।

चतुर्थ वामदेव मन्त्र की 'वामदेवाय नमः' पहली, 'ज्येष्ठाय नमः' दूसरी, 'रुद्राय नमः' तीसरी, 'कालाय नमः' चौथी, 'कल' यह पांचवीं, 'विकरणाय नमः' छठी, 'बल' यह सातवीं, 'विकरणाय नमः' आठवीं, 'बल' यह नवीं, 'प्रमथनाय नमः' दसवीं,

तृतीयं रुद्राय नमः कालायेति चतुर्थकम् ।
पञ्चमं कल इत्युक्तं विकर्णाय नमस्तु षट् ।।२८।।

सप्तमं बल इत्युक्तमष्टमं विकरणाय च ।
नवमं बल इत्युक्तं दशमं प्रमथनाय च ।।२९।।

सर्वभूतदमनाय नमश्चैकादशं स्मृतम् ।
द्वादशं च नमश्चेति उन्मनाय त्रयोदशम् ।।३०।।

एतास्त्रयोदशकला वामदेवकलाः स्मृताः ।

सद्योजातकलाः

सद्योजातं प्रपद्यामि प्रथमं परिकीर्तितम् ।।३१।।

द्वितीयं सद्योजाताय वै नमश्चेति कीर्तितम् ।
तृतीयं च भवे चैव भवे चेति चतुर्थकम् ।।३२।।

पञ्चमं च नातिभवे षष्ठं चेति भजस्व माम् ।
सप्तमं तु भवं विद्यादुद्भवायाष्टमं भवेत् (नमः) ।।३३।।

एवमष्टकलाश्चैव सद्योजाते प्रकीर्तिताः ।
ईशानादि च सद्यान्ता अष्टत्रिंशत्कलाः स्मृताः ।।३४।।

कलाब्रह्म इति प्रोक्तं पञ्चब्रह्म च कीर्तितम् ।
मूर्त्यादीनां कलान्तानां लक्षणं वर्ण्यते क्रमात् ।।३५।।

'सर्वभूतदमनाय नमः' ग्यारहवीं, 'मनः' यह बारहवीं और 'उन्मनाय नमः' यह तेरहवीं कला है।।२७-३१।।

पंचम सद्योजात मन्त्र की 'सद्योजातं प्रपद्यामि' यह पहली, 'सद्योजाताय वै नमः' दूसरी, 'भवे' तीसरी, 'अभवे' चौथी, 'नातिभवे' पांचवीं, 'भजस्व माम्' छठी, 'भव' सातवीं और 'उद्भवाय' यह आठवीं कला है। इस तरह सद्योजात मन्त्र की ये आठ कलाएँ हैं।।३१-३४।।

इस प्रकार ईशान से सद्योजात पर्यन्त पंचब्रह्म के नाम से प्रसिद्ध इन पाँच मन्त्रों की अड़तीस कलाओं का स्वरूप यहाँ बताया गया है। इसीलिये पंचब्रह्म को ही कलाब्रह्म कहा जाता है। इस तरह से यहाँ मूर्तिब्रह्म से लेकर कलाब्रह्म तक का पचीस प्रकार का स्वरूप बताया गया है। अब इनका पृथक् पृथक् लक्षण बताया जा रहा है।।३४-३५।।

ईशान, ईश्वर, ब्रह्मा, शिव और सदाशिव — इन पाँच मूर्तियों का जो जो स्वरूप

ईशानश्चेश्वरो ब्रह्मा शिवश्चेति सदाशिवः ।
पञ्चमूर्त्याकृतिर्यद्यत् तत्तद् वै प्रणवाकृतिः ।।३६।।

सद्यादीनां पञ्चतत्त्वभावना

सद्यादीनां च पञ्चानां क्रमेण परिलक्ष्यते ।
कर्म कर्तृ समूर्तिश्च अमूर्तिश्च शिवस्तथा ।।३७।।
पञ्चसादाख्यतत्त्वानां यद्भावं विन्यसेत् क्रमात् ।
आत्मादीनि च तद्भावं शुद्धान्तानि च लक्ष्यते ।।३८।।
पार्थिवं पीतवर्णं स्याच्छुक्लाभा ह्याप ईरिताः ।
रक्ताभं तैजसं प्रोक्तं कृष्णाभमनिलं विदुः ।।३९।।
व्योम धूम्रनिभं विद्यादेवं भूताकृतिर्भवेत् ।

सद्योजातस्वरूपम्

गोक्षीरशङ्खवर्णाभं जटामुकुटमण्डितम् ।।४०।।
चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं नेत्रद्वादशभिर्युतम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तमेवं सद्य उदाहृतम् ।।४१।।

वामदेवस्वरूपम्

जपापुष्पनिभं वामं जटामकुटमण्डितम् ।
चतुर्वक्त्रसमायुक्तं चतुर्भुजसमन्वितम् ।।४२।।

है, वही स्वरूप पाँच प्रणवों का भी है। सद्योजात आदि पाँच मूर्तियों का स्वरूप यहाँ बताया जा रहा है। ये ही पाँच मूर्तियाँ क्रमशः कर्म, कर्तृ, मूर्त, अमूर्त और शिव सादाख्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पाँच सादाख्य तत्त्वों का जो स्वरूप है, सद्योजात आदि पाँच मूर्तियों की भी उसी रूप में भावना करे। आत्मप्रासाद से लेकर शुद्धप्रासाद पर्यन्त पाँच प्रासाद मन्त्रों से इनकी भावना की जाती है।।३६-३८।।

पार्थिव तत्त्व पीत वर्ण, जल तत्त्व शुक्ल वर्ण, तैजस तत्त्व रक्त वर्ण, वायवीय तत्त्व कृष्ण वर्ण और व्योम तत्त्व धूम्र वर्ण का माना गया है। सद्योजात आदि पाँच मूर्तियों का भी क्रमशः यही वर्ण है।।३९-४०।।

इनमें से सद्योजात मूर्ति का ध्यान इस प्रकार बताया गया है — गोक्षीर (गाय का दूध) और शंख के समान इसका श्वेत वर्ण है। यह जटा और मुकुट से अलंकृत है। इसके चार मुँह और चार भुजाएँ हैं। यह बारह नेत्र वाली है और सभी तरह के आभूषणों को धारण किये हुए है।।४०-४१।।

वामदेव का ध्यान करते समय जपा पुष्प के समान लाल वर्ण, जटा और मुकुट से अलंकृत, चार मुँह और चार भुजाओं एवं बारह नेत्र वाले, सर्वांग सुन्दर, लाल वस्त्र

नेत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं सर्वावयवसंयुतम् ।
रक्तवस्त्रधरं देवं रक्तवस्त्रोत्तरीयकम् ।।४३।।

दक्षिणेऽभयटङ्कं च वामे वरदशूलधृत् ।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तमाल्यैरलङ्कृतम् ।।४४।।

सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
वामदेव इति प्रोक्तं सर्ववश्यकरं परम् ।।४५।।

अघोरस्वरूपम्

भिन्नाञ्जनसमप्रख्यमघोरं रौद्ररूपकम् ।
चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं जटामकुटमण्डितम् ।।४६।।

द्वादशाक्षिसमायुक्तं दंष्ट्राकरालमास्यकम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं व्याघ्रचर्मोत्तरीयकम् ।।४७।।

पादनूपुरसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पैरलङ्कृतम् ।।४८।।

टङ्कशूलसमायुक्तं वरदाभयसंयुतम् ।
सर्वावयवसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ।।४९।।

और लाल ही उत्तरीय (दुपट्टा) धारण किये हुए, दाहिने हाथों में अभय और टंक तथा बायें हाथों में वरमुद्रा और शूल को धारण किये हुए, लाल चन्दन से लिप्त शरीर वाले, लाल पुष्पों की माला को धारण किये हुए, सामुद्रिक शास्त्र में वर्णित सभी श्रेष्ठ लक्षणों वाले अवयवों से सुशोभित, सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत स्वरूप की भावना की जाती है। वामदेव के इस स्वरूप की भावना करने वाला सभी को अपने वश में कर लेने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।।४२-४५।।

अघोर का स्वरूप घने काजल के समान कृष्ण वर्ण का होने से बहुत भयानक लगता है। चार मुख, चार भुजा और बारह नेत्रों वाला यह स्वरूप भी जटा और मुकुट से मंडित है। लंबी डाढों के कारण इनका मुख डरावना लगता है। व्याघ्र के चर्म का वस्त्र और यज्ञोपवीत धारण किये हुए है। पैरों में नूपुर पहने हुए है और सभी प्रकार के आभूषणों से इनका शरीर सुशोभित है। दिव्य गन्ध से सारा शरीर सुवासित है और दिव्य पुष्पों की माला से सुशोभित है। इनके दाहिने हाथों में टंक तथा शूल और बायें हाथ में वर और अभय मुद्रा से सुशोभित है। इस तरह सर्वांग सुन्दर एवं सभी शुभ लक्षणों से संयुक्त है यह अघोर का स्वरूप। इस स्वरूप का ध्यान करने से साधक सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है।।४६-५०।।

अघोररूपमेवं हि सर्वशत्रुजयं भवेत् ।

तत्पुरुषस्वरूपम्

पुरुषं कुङ्कुमाभं स्याच्चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् ।।५०।।

जटामकुटसंयुक्तं नेत्रैर्द्वादशभिर्युतम् ।
सर्वावयवसंयुक्तं पीताम्बरधरं परम् ।।५१।।

पीतवस्त्रोत्तरीयं च सर्वाभरणभूषितम् ।
सव्ये तु टङ्कमभयं शूलं वरदमन्यके ।।५२।।

दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पैरलङ्कृतम् ।
एवं तत्पुरुषं विद्यात् सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।५३।।

ईशानस्वरूपम्

ईशानं स्फटिकाभं स्याद् जटामकुटमण्डितम् ।
चतुर्वक्त्रसमायुक्तं द्वादशाक्षिसमन्वितम् ।।५४।।

चतुर्भुजसमायुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
शुक्लाम्बरधरं सौम्यं शुक्लवस्त्रोत्तरीयकम् ।।५५।।

टङ्कशूलसमायुक्तं वरदाभयसंयुतम् ।
सर्वावयवसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।।५६।।

दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पैरलङ्कृतम् ।
एवमीशानरूपं तु सद्यो मोक्षप्रदायकम् ।।५७।।

तत्पुरुष का स्वरूप कंकुम के समान पीत वर्ण का है। इनके भी चार मुख, चार भुजा और बारह नेत्र हैं। जटा और मुकुट धारण किये हुए है। सर्वांग सुन्दर यह स्वरूप पीताम्बर धारण किये हुए है। इनका उत्तरीय भी पीत वर्ण का ही है। सब प्रकार के आभूषणों से यह सुशोभित है। दाहिने हाथ टंक और अभय मुद्रा से तथा बायें हाथ शूल और वरद मुद्रा से अलंकृत हैं। दिव्य गन्ध से इनका सारा शरीर सुवासित है और दिव्य पुष्पों की माला से सुशोभित है। इस स्वरूप का ध्यान करने से साधक को सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।।५०-५३।।

ईशान मूर्ति स्फटिक के समान उज्ज्वल वर्ण की है। जटा और मुकुट से अलंकृत है। इसके चार मुख और बारह नेत्र हैं। चार भुजाएँ है। शरीर के अवयव सभी शुभ सामुद्रिक लक्षणों से संयुक्त हैं। श्वेत वस्त्र और श्वेत उत्तरीय से सुशोभित इसका स्वरूप अतीव मनोहर लगता है। इसके चारों हाथों में टंक, शूल, वर और अभय मुद्रा से सुशोभित हैं। सर्वांग सुन्दर और सभी आभूषणों से सुशोभित है। दिव्य पुष्पों की माला से अलंकृत है और इसका

सौम्यासौम्यमूर्तामूर्तादित्वम्

अघोरं रौद्रमित्युक्तं शेषं सौम्यमुदाहृतम् ।
सद्यो मूर्तं विजानीयादमूर्तं वामदेवकम् ।।५८।।
अघोरं कर्तृरूपं स्यात् कर्म तत्पुरुषं भवेत् ।
शिवसादाख्यमीशानं पञ्चतत्त्वात्मकं विदुः ।।५९।।
पञ्चमूर्त्यात्मकं यत्तत् पिण्डब्रह्माकृतिर्भवेत् ।
एवं पिण्डाकृतिः प्रोक्ता कलारूपमिहोच्यते ।।६०।।

कलावर्णादिनिरूपणम्

शङ्खकुन्देन्दुवर्णं च स्फाटिकक्षीरसंनिभम् ।
ईशानस्य कलानां तु पञ्च वर्णाः प्रकीर्तिताः ।।६१।।
रक्तासितश्वेतपीतास्तत्पुरुषकलाः स्मृताः ।
अञ्जनारुणपीतं च श्यामं नीलासितारुणम् ।।६२।।
काञ्चनं चाष्टवर्णानि अघोरस्य कलाः स्मृताः ।
जपापीताञ्जनश्यामं शुक्लं श्यामाञ्जनारुणम् ।।६३।।
अञ्जनं स्फाटिकं रक्तं नीलं मरकतं तथा ।
एते वामकलानां तु त्रयोदश समीरिताः ।।६४।।

सारा शरीर दिव्य गन्ध से सुवासित है। ईशान मूर्ति के इस स्वरूप का ध्यान करने वाला साधक तत्काल मुक्ति प्राप्त कर सकता है।।५४-५७।।

अघोर का स्वरूप भयावह माना गया है। शेष सभी मूर्तियाँ सौम्य स्वरूप वाली हैं। सद्योजात मूर्तसादाख्य, वामदेव अमूर्तसादाख्य, अघोर कर्तृसादाख्य, तत्पुरुष कर्मसादाख्य और ईशान शिवसादाख्य स्वरूप है। ये पंचब्रह्म ही पंचतत्त्वात्मक हैं। यह पंचमूर्तिस्वरूप ही पिण्डब्रह्म कहलाता है। इस प्रकार पिण्डब्रह्म का स्वरूप बताया गया है। अब पंचब्रह्म की कलाओं का स्वरूप बताया जा रहा है।।५८-६०।।

ईशान की पाँच कलाओं का वर्ण क्रमशः शंख, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा, स्फटिक मणि और दूध के समान श्वेत है। तत्पुरुष की चार कलाएँ क्रमशः रक्त, कृष्ण, शुक्ल और पीत वर्ण की हैं। अघोर की आठ कलाओं का क्रमशः काला, अरुण, पीत, श्याम, नील, श्वेत, रक्त और कांचन वर्ण है। वामदेव की तेरह कलाएँ क्रमशः जपाकुसुम सदृश लाल, पीत, अंजन सदृश गहरा काला, श्याम, शुक्ल, श्याम, अंजन, अरुण, अंजन, स्फटिकसदृश,

रक्तं सितं तथा नीलं कृष्णं पीतं सकुङ्कुमम् ।
भिन्नाञ्जनं चारुणं च त्वष्टौ सद्यःकलाः स्मृताः ।।६५।।

अष्टत्रिंशत्कलाः सर्वास्त्रिणेत्राश्च चतुर्भुजाः ।
अभयं वरदं शूलं परशुं चैव बिभ्रतः ।।६६।।

सर्वलक्षणसंयुक्ताः सर्वाभरणभूषिताः ।

कलाशक्तयः

कलारूपेषु सर्वेषु वामाद्याः शक्तयः स्थिताः ।।६७।।

अष्टत्रिंशत्कलानां तु अष्टत्रिंशच्च शक्तयः ।
एवं शक्तिसमोपेतं न्यासकाले तु विन्यसेत् ।।६८।।

मूर्तिस्तत्त्वं तथा भूतं पिण्डं चैव कला तथा ।
पञ्चब्रह्माणि चैतानि सर्वकार्येषु योजयेत् ।।६९।।

ब्रह्मभेदो मया प्रोक्तश्चाङ्गभेदमथ शृणु ।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे ब्रह्मभेदो नाम
सप्तमः पटलः समाप्तः ।।७।।

रक्त, नील और मरकत वर्ण की है। इसी तरह सद्योजात की आठ कलाओं का वर्ण क्रमशः रक्त, श्वेत, नील, कृष्ण, पीत, कंकुम, गहरा काला और अरुण है।।६१-६५।।

इस प्रकार पंचब्रह्म मन्त्रों की अड़तीस कलाओं के वर्णों का वर्णन यहाँ किया गया है। ये सभी कलाएँ तीन नेत्र और चार भुजाओं वाली हैं। इनके चार हाथ अभय और वरद मुद्रा से तथा शूल और परशु से सुशोभित हैं। सभी शुभ लक्षणों से इनके अंग मंडित हैं और सारे अलंकारों से अलंकृत हैं। पंचब्रह्म की इन कलाओं में वामा आदि शक्तियाँ निवास करती हैं और अड़तीस कलाओं की पृथक् पृथक् अड़तीस शक्तियाँ हैं।।६६-६८।।

सकलीकरण की विधि को सम्पन्न करने के लिये साधक इन समस्त शक्तियों और मूर्ति, तत्त्व, भूत, पिण्ड और कलाओं के साथ पंचब्रह्म मन्त्रों का शिव की आराधना करते समय अपने शरीर में न्यास करे।।६८-६९।।

हे सुब्रह्मण्य ! इस प्रकार पंचविध ब्रह्म का स्वरूप मैंने तुमको सुनाया है। अब आगे तुम अंग के भेदों को सुनो।।७०।।

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का यह ब्रह्मभेद नामक
सप्तम पटल पूरा हुआ ।।७।।

❋ ❋ ❋

अष्टमः पटलः

अङ्गविभागः

अतः परं प्रवक्ष्येऽहमङ्गभेदविधिं परम् ।
अङ्गं षड्भेदमित्युक्तं षडङ्गं तदिहोच्यते ।।१।।

षडङ्गमङ्गभेदाश्च षट्त्रिंशदिति ते स्मृताः ।
एभिर्भेदैः समायुक्तमङ्गं षट्त्रिंशदुच्यते ।।२।।

तेषां तु लक्षणं वक्ष्ये समासाच्छृणु षण्मुख ।

षडङ्गनामानि क्रमश्च

शिवाङ्गं चैव भूताङ्गं कूटाङ्गं च तथैव च ।।३।।

विद्याङ्गं चैव शक्त्यङ्गं सामान्याङ्गं तथैव च ।
एतानि चाङ्गनामानि शिवाङ्गानि षडानन ।।४।।

एतेषां चैवमङ्गानां शिवाङ्गं पूर्वमुच्यते ।

१. शिवाङ्गनिरूपणम्

नवार्णविकृतिष्वासु तुर्यं पञ्चममष्टमम् ।।५।।

ब्रह्म के भेदों का निरूपण करने के बाद अब मैं अंग के भेदों का निरूपण करूँगा। अंग के शास्त्रों में छः भेद बताये गये हैं। उन छः भेदों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।।१।।

इन छः अंगों में से प्रत्येक के छः छः भेद होने से इनकी संख्या छत्तीस हो जाती है। इन भेदों के साथ अंगतत्त्व छत्तीस भेद वाला हो जाता है।।२।।

हे षडानन स्कन्द ! मैं उनका लक्षण संक्षेप में तुम्हें बताता हूँ, उसे सावधानी से सुनो। शिवांग, भूतांग, कूटांग, विद्यांग, शक्त्यंग और सामान्यांग — ये ही उनके नाम हैं।।३-४।।

हे षडानन ! इन षड्विध अंगों में से प्रथम शिवांग का स्वरूप मैं बता रहा हूँ। विकृति के नाम से परिगणित नौ अक्षरों में से चतुर्थ ॠकार, पंचम लृकार और अष्टम अंकार — इन तीन वर्णों को छोड़कर बचे आ ई ऊ ऐ औ अः — इन छः वर्णों को पर नाम के वर्ण हकार से संयुक्त करना चाहिये। इसके उपरान्त अःकार को छोड़कर बाकी सबको बिन्दु

त्रीणि वर्णानि संत्यज्य शेषाः षट् परसंयुताः ।
कार्यकारणसंयुक्ताः सर्वेषां च षडानन ।।६।।

प्रथमं हृदयं विद्याद् द्वितीयं तु शिरो भवेत् ।
तृतीयं तु शिखां विद्याच्चतुर्थं कवचं भवेत् ।।७।।

पञ्चमं नेत्रत्रयं स्यादस्त्रं षष्ठमुदाहृतम् ।
शिवाङ्गनामान्येतानि कीर्तितानि क्रमाद् विदुः ।।८।।

आदौ प्रणवमुच्चार्य शिवार्णं तदनन्तरम् ।
अभिधानं चतुर्थ्यन्तं नमस्कारादिभिर्युतम् ।।९।।

नमोऽन्तं हृदयं विद्यात् स्वाहान्तं च शिरो भवेत् ।
वषडन्तं शिखा ज्ञेया हुङ्कारः कवचं भवेत् ।।१०।।

वौषड् नेत्रत्रयं विद्यात् फट्कारश्चास्त्रमन्त्रतः ।
एवं शिवाङ्गमुद्दिष्टं भूताङ्गं च ततः शृणु ।।११।।

२. भूताङ्गनिरूपणम्

पार्थिवं जीवसंयुक्तं द्वितीयस्वरभूषितम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं प्रथमं बीजमुच्यते ।।१२।।

से संयुक्त कर देने पर हां हीं हूं हैं हौं हः इन छः अंग-बीजों की निष्पत्ति होती है।।५-६।।

इनमें प्रथम हृदय बीज, द्वितीय शिरोबीज, तृतीय शिखाबीज, चतुर्थ कवच, पंचम नेत्रत्रय और षष्ठ अस्त्रबीज माना गया है। ये ही छः शिवांग कहलाते हैं। इनके पहले प्रणव का उच्चारण करना चाहिये। तब एक-एक बीजाक्षर का उच्चारण करते हुए चतुर्थ्यन्त हृदय आदि अंगों का उच्चारण कर अन्त में क्रमशः नमः आदि शब्दों को जोड़ना चाहिये। यहाँ हृदय के साथ नमः, शिरस् के साथ स्वाहा, शिखा के साथ वषट्, कवच के साथ हुं, नेत्रत्रय के साथ वौषट् तथा अस्त्र के साथ फट् शब्द को जोड़ना चाहिये। इस तरह से यहाँ छः शिवांगों का स्वरूप बनता है। इनका उद्धृत स्वरूप इस प्रकार होगा — १. ॐ हाँ हृदयाय नमः, २. ॐ हीं शिरसे स्वाहा, ३. ॐ हूँ शिखायै वषट्, ४. ॐ हैं कवचाय हुं, ५. ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ६. ॐ हः अस्त्राय फट्।।७-११।।

अब छः भूतांगों का विवरण सुनो। पृथिवी तत्त्व के बीज लकार को जीव नामक हकार से संयुक्त कर उसे द्वितीय स्वर आकार से और बिन्दु एवं नाद से संयोजित कर देने पर **ह्लाँ** यह भूतांग प्रथम बीज बनता है।। वरुण (जीवन) बीज वकार को शिवबीज हकार से संयुक्त कर उसके साथ चतुर्थ स्वर ईकार को संयोजित किया जाता है। इसके साथ शिव-

शिवार्णं जीवनोपेतं चतुर्थस्वरभूषितम् ।
शिवशक्तिसमायुक्तं द्वितीयं बीजमुच्यते ।।१३।।
पञ्चमं षष्ठसंयुक्तं पञ्चमान्तकलायुतम् ।
आधाराधेयसंयुक्तं तृतीयं बीजमुच्यते ।।१४।।
भूतान्तमनिलोपेतं पञ्चसप्तकलान्वितम् ।
परापरसमायुक्तं चतुर्थं बीजमुच्यते ।।१५।।
तत्त्वान्तं तत्त्वसंयुक्तं चतुर्दशकलान्वितम् ।
कार्यकारणसंयुक्तं पञ्चमं बीजमुच्यते ।।१६।।
शक्त्यन्तं शिवसंयुक्तमादिबीजं कलान्वितम् ।
तयोर्मध्यगतो बिन्दुः षष्ठं बीजमुदाहृतम् ।।१७।।
पञ्चभिर्ग्रन्थिभिर्युक्तं छेद्यमन्त्रेण चात्मनि ।
एवं भूताङ्गमाख्यातं कूटाङ्गानि ततः शृणु ।।१८।।

३. कूटाङ्गनिरूपणम्

प्रथमस्य द्वितीयं तु चतुर्थं पञ्चमान्तकम् ।
रुद्रान्तं रुद्रतुर्यार्णमन्तं कूटाक्षरेण युक् ।।१९।।

शक्ति का योग करने पर ह्रीं यह भूतांग द्वितीय बीज बनता है।। षष्ठ बीज रेफ के साथ पंचम बीज हकार को पंचमान्त (षष्ठ) कलात्मक ऊकार बीज के साथ संयोजित कर उसे आधाराधेय, अर्थात् बिन्दुनाद से अलंकृत कर देने पर ह्रूँ यह भूतांग तृतीय बीज उद्धृत होता है। भूतान्त हकार, अनिल बीज यकार, पंचसप्त (बारह) कला ऐकार के साथ पूर्ववत् बिन्दु-नाद का संयोजन करने पर भूतांग के चतुर्थ बीज ह्यैं का उद्धार होता है।। तत्त्वान्त हकार को तत्त्वसंज्ञक हकार से तथा इनको कलान्त औकार से तथा इन सबको कार्यकारण (बिन्दु-नाद) से संयुक्त करने पर भूतांग पंचम बीज ह्हौं उद्धृत होता है।। शिवबीज हकार के साथ शक्त्यन्त हकार को रखकर प्रथम हकार को अकार कला से संयुक्त कर उसे बिन्दु से विभूषित करने पर षष्ठ भूतांग बीज हँह् बमता है।। पंचभूत ग्रन्थियों और छेद्य (अस्त्र) मन्त्र से यहाँ षडंग मन्त्र गृहीत होते हैं। पूर्ववत् इनका उच्चारण कर अपने हृदय आदि अंगों में इनका न्यास किया जाता है। इस तरह से भूतांगों का विवरण यहाँ दिया गया है।।११-१८।।

अब कूटांगों का परिचय दिया जा रहा है। प्रथम स्वर वर्ग का द्वितीय अक्षर आकार, चतुर्थ ईकार, पंचमान्त (षष्ठ) ऊकार, रुद्रान्त (द्वादश) ऐकार, रुद्रतुर्य वर्ण औकार और अन्तिम वर्ण विसर्ग को कूटाक्षर क्षकार से संयोजित कर और उसे बिन्दु-नाद से अलंकृत करन पर क्षाँ क्षीँ क्षूँ क्षौँ क्षँः — इन कूटांग बीजों का उद्धार होता है। इस तरह कूटांगों का परिचय दिया गया है।।१८-२०।।

बिन्दुनादसमायुक्तं कूटाङ्गमिदमीरितम् ।
एवं कूटाङ्गमित्युक्तं विद्याङ्गानि ततः शृणु ।।२०।।

४. विद्याङ्गनिरूपणम्

प्रकारं तु समुद्धृत्य तकारं तु समुद्धरेत् ।
दकारोपेतमाकारं यकारं च नमोऽन्तकम् ।।२१।।

एवं विद्याङ्गमाख्यातं प्रकारं च समुद्धरेत् ।
न(ण)कारं चैव वाकारं तकारेण मकारयुक् ।।२२।।

नमोऽन्तं च समुद्धृत्य स्वाहान्तं शिरसा विदुः ।
शिकारं चैव वाकारं फट् च हुङ्कारमेव च ।।२३।।

वषट्कारसमायुक्तं शिखाबीजमुदाहृतम् ।

कवचमन्त्रः

शिकारं चैव वाकारं तकारेण मकारयुक् ।।२४।।

तकारं च मकारं च टकारं च समुद्धरेत् ।
तकारं च हकारं च अनुस्वारं च सर्वतः ।।२५।।

जकारे तु समायुक्तं भकारं च फकारकम् ।
रकारं च शिकारं च मकारं च समुद्धरेत् ।।२६।।

अब विद्यांगों के विषय में सुनो। पहले प्रकार का उद्धार करे। तब तकार और अकार सहित दकार को उद्धृत कर अन्त में नमः पद जोड़े। इस तरह से 'प्रतदाय नमः' यह प्रथम विद्यांग मन्त्र का स्वरूप बनेगा। इस विद्यांग मन्त्र के साथ प्रकार, न(ण)कार, वाकार, तकार और मकार के साथ चतुर्थी विभक्ति और नमः जोड़ने पर 'प्रणवात्मने नमः' इस विद्या मन्त्र का भी उद्धार होगा। इनका हृदय में न्यास किया जाता है। स्वाहा पद जोड़ने इनसे शिर पर न्यास होगा। शिकार, वाकार, फट्, हुंकार और वषट्कार— ये सब शिखाबीज कहलाते हैं।।२०-२४।।

शिकार, वाकार, तकार, मकार, तकार, मकार, टकार, तकार, हकार, अनुस्वार, जकार, भकार, फकार, रकार, शिकार और मकार का उद्धार करे। आगे अकार, वकार, नकार, मकार को वह्निशिखा ईकार से संयुक्त करे। तब यकार, मकार, यौकार, ककार को अनुस्वार से संयुक्त करे। आगे ककार, मकार, फकार, सिकार को अनुस्वार से संयुक्त करे। फिर गकार, भकार, ऋकार, भकार और मकार से समुच्चित करे। तब अकार, वाकार, हकार, मकार, शिकार लकार, मकार और हार से संयुक्त करे। आगे क्षकार, उकार, ककार,

अकारं च वकारं च नकारं च भकारयुक्।
वह्निशेखरसंयुक्तं यकारं तु मकारयुक्।।२७।।

यौकारं च ककारं च अनुस्वारसमायुतम्।
ककारं च मकारं च फकारं च सिकारकम्।।२८।।

अनुस्वारसमायुक्तं गकारं च भकारकम्।
ऋकारं च भकारं च मकारेण समुच्चयम्।।२९।।

अकारं चैव वाकारं हकारं च भकारकम्।
शिकारं च लकारं च मकारं हारमेव च।।३०।।

क्षकारं च उकारं च ककारं च एकारकम्।
नकारेण समायुक्तो बन्धशब्द उदाहृतः।।३१।।

पूर्णं चैव तु पूर्णं च कह-कह-समायुतम्।
किरिद्वन्द्वसमायुक्तं सूक्ष्म-सूक्ष्म-समायुतम्।।३२।।

इकारं च दकारं च रिकारो हारमेव च।
चकारं च मकारं च उकारं च प्रकाशकम्।।३३।।

विकारं च शकारं च स ष चैव दुकारकम्।
फट्कारं स्तम्भयश्चेति स्तम्भशब्दं तथैव च।।३४।।

यकारं चैव हुङ्कारं फट्कारेण समायुतम्।
एवं कवचमाख्यातं सर्वरक्षाकरं भवेत्।।३५।।

अस्त्रमन्त्रः

प्रकारं च स्फुकारं च रकारं च स्फुकारकम्।
रकारं चैव विन्यस्य घोरं चैव तु घोरकम्।।३६।।

एकार और नकार से संयुक्त कर तब बन्ध, पूर्ण पूर्ण, कह, कह, किरि किरि, सूक्ष्म सूक्ष्म शब्दों को जोड़े। तब इकार, दकार, रिकार, हार, चकार, मकार, उकार, प्रकाश, विकार, शकार, सकार, षकार, दुकार, फट्कार, स्तम्भय स्तम्भय, यकार, हुंकार और अन्त में फट् शब्द से संयुक्त करे। इस तरह से कवच मन्त्र का स्वरूप बनता है। सभी प्रकार के रक्षा कार्यों में इसका विनियोग होता है॥२४-३५॥

प्रकार के आगे स्फुर स्फुर शब्दों का विन्यास करे। आगे घोर, घोरतर और घोरतम रूप शब्दों का न्यास करे। तब चट चट, प्रचट प्रचट, कह कह, वम वम, घातय घातय शब्दों को रखकर अन्त में हुँ फट् स्वाहा शब्दों को जोड़े। तब अस्त्र मन्त्र का स्वरूप इस तरह से बनता है — प्रस्फुर प्रस्फुर घोर-घोरतर-घोरतमरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम घातय घातय हुँ फट् स्वाहा। इस तरह यहाँ पाँच विद्यांग मन्त्रों का स्वरूप

तकारं चैव विन्यस्य मकारं चैव विन्यसेत् ।
तकारं च मकारं च रूकारं च पकारकम् ।।३७।।

चटश्चैव चटश्चैव प्रचटः प्रचटस्तथा ।
कहश्चैव कहश्चैव वमश्चैव वमस्तथा ।।३८।।

घातय घातय चैव हुंफट्कारसमायुतम् ।
स्वाहाकारेण संयुक्तो मन्त्रो हेतिरुदाहृतः ।।३९।।

एवं विद्याङ्गमाख्यातं शक्त्यङ्गानि ततः शृणु ।

५. शक्त्यङ्गनिरूपणम्

आधारशक्तिबीजं च बिन्दुनादसमन्वितम् ।।४०।।

प्रथमं बीजमित्युक्तं पीताभं शक्तिबीजकम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं द्वितीयं बीजमुच्यते ।।४१।।

ऊकारं शक्तिबीजं च बिन्दुनादसमन्वितम् ।
तृतीयं बीजमित्युक्तमैकारं शक्तिसंयुतम् ।।४२।।

कार्यकारणसंयुक्तं चतुर्थं बीजमुच्यते ।
शक्तिश्चतुर्दशोपेता शिवशक्तिसमायुता ।।४३।।

पञ्चमं बीजमाख्यातं स्वरान्तं शक्तिसंयुतम् ।
वर्णं चैव सुसंयुक्तं षष्ठकं बीजमुच्यते ।।४४।।

बताया गया है।।३५-४०।।

अब शक्ति के अंगों के विषय में सुनो। आधारबीज सकार को शक्तिबीज आकार से एवं बिन्दु-नाद से संयुक्त करने पर **सां** यह प्रथम शक्तिबीज बनेगा। ई को इसका पर्याय माना गया है। पीताभ ईकार, शक्तिबीज सकार और बिन्दु-नाद के संयोग से बना **सीं** यह द्वितीय शक्तिबीज बनेगा। ऊकार के साथ इनका संयोग होने पर **सूँ** यह तृतीय बीज, ऐकार से संयोग होने पर **सैं** यह चतुर्थ बीज, औकार से इनका योग होने पर **सौं** यह पंचम बीज तथा अ:कार से मिलने पर षष्ठ **सः** बीज बनेगा। ये शक्ति के छ: अंगबीज बनते हैं। इस प्रकार यहाँ इन छ: शक्त्यंगों का वर्णन किया गया है।।४०-४५।।

अब षड्विध सामान्य अंगों का परिचय दिया जा रहा है। आदिवर्ग से सोलह स्वर वाला प्रथम वर्ग गृहीत होता है। उसमें अश्विनी से दूसरे स्वर आकार का, वेद से चतुर्थ स्वर ईकार का, रस से छठे स्वर ऊकार का, भानु (आदित्य) से बारहवें स्वर ऐकार का,

एवं शक्त्यङ्गमाख्यातं सामान्याङ्गमथोच्यते ।

६. सामान्याङ्गनिरूपणम्

आदिवर्गेऽश्विनौ वेदा रसो भानुर्मनुस्तथा ।
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राश्च आदित्येन्दुगुहास्तथा ।।४६।।

मदनक्षेत्रविघ्नेशाश्चाष्टमूर्तिर्वसुस्तथा ।
विद्येशास्त्रगणेशाश्च लोकपालायुधानि च ।।४७।।

सिद्धविद्याधराश्चैव गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
यक्षकिन्नरभूताश्च ऋषयः खेचरास्तथा ।।४८।।

अन्येषां सर्वदेवानां स्वनामाद्यक्षरं तथा ।
सामान्येषु समायोगाद् बिन्दुनादसमन्वितम् ।।४९।।

तेषामङ्गानि चोक्तानि मूलं तद्बीजमुच्यते ।
सामान्याङ्गमिदं प्रोक्तं तेषां वर्णमथोच्यते ।।५०।।

अङ्गवर्णाः

हृदयं शुक्लवर्णं स्यात् पीतवर्णं शिरस्तथा ।
शिखां रक्तसमां विद्यात् कवचं स्फटिकप्रभम् ।।५१।।

मनु से चौदहवीं संख्या के औकार का और षोडश से सोलहवें स्वर अ:कार का ग्रहण किया जाता है। ये छ: स्वर सभी देवताओं के सामान्य अंग माने गये हैं। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, आदित्य, चन्द्र, गुह (स्कन्द), मदन (कामदेव), क्षेत्रपाल, विघ्नेश, भव आदि शिव की आठ मूर्तियाँ, धरा आदि आठ वसुगण, श्रीकण्ठ आदि आठ विद्येश, गणेश्वर, लोकपाल, आयुधसमूह, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, किंनर, भूत, ऋषि, आकाशगामी देवगण और अन्य भी सभी देवगणों के अपने-अपने नामों के प्रारंभ के अक्षरों से इन छ: स्वरों को जोड़ने से ये उनके बीजाक्षर बन जाते हैं। इसीलिये ये छ: स्वर सामान्यांग कहलाते हैं। इनके साथ भी बिन्दु और नाद का संयोजन किया जाता है। इन सब देवताओं के मूलबीज तो वे ही होंगे, जिनका वर्णन वर्णपटल में किया गया है। इस प्रकार सामान्यांग का वर्णन पूरा होता है।।४५-५०।।

अब इन सबके वर्णों (रंगों) का परिचय दिया जा रहा है। इनमें हृदयबीज का वर्ण शुक्ल, शिरोबीज का पीत, शिखा का लाल, कवच का स्फटिकाभ, नेत्र का काला और अस्त्र का वर्ण भी काली आभा वाला होता है। छ: शिवांगों के ये षड्विध वर्ण हैं।।५०-५२।।

अब भूतांगों के वर्ण बताये जा रहे हैं। पीत, शुक्ल, अरुण, कृष्ण, धूम्र और लाल ये क्रमशः भूतांगों के हृदय आदि के वर्ण माने गये हैं।।५२-५३।।

नेत्रं श्यामनिभं विद्यात् कृष्णाभं चास्त्रमुच्यते ।
एवं शिवाङ्गमाख्यातं भूताङ्गं च तथोच्यते ।।५२।।

पीतं शुक्लारुणं चैव कृष्णं धूम्रं च पावकम् ।
भूताङ्गानि तु वर्णानि समासात् कीर्तितानि तु ।।५३।।

श्वेतं रक्तं तथा नीलं कुङ्कुमं पीतमञ्जनम् ।
कूटाङ्गानां तु वर्णानि समासादुदितानि तु ।।५४।।

जपाकुसुमकुन्दाभं पावकं चेन्द्रनीलकम् ।
सिन्दूरं हरितालं च विद्याङ्गानां नभस्तथा ।।५५।।

पीतं श्यामं तथा रक्तं कृष्णं मरकतं तथा ।
एतैरेव सवर्णानि शक्त्यङ्गानां क्रमेण तु ।।५६।।

स्फाटिकं रक्तपीतं च श्यामं स्यात् काञ्चनारुणम् ।
एतान्युक्तानि वर्णानि सामान्याङ्गं प्रकीर्तितम् ।।५७।।

ध्यानस्वरूपम्

चतुर्भुजं त्रिणेत्रं च जटामुकुटमण्डितम् ।
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।।५८।।

त्रिशूलमभयं सव्ये कपालं वरमन्यके ।
हारकेयूरसंयुक्तं कटकैः कुण्डलैर्युतम् ।।५९।।

इसी तरह से श्वेत, रक्त, नील, कुंकुम, पीत और अंजन (कृष्ण) — ये छः वर्ण कूटांगों में स्थित हृदय आदि के वर्ण हैं। विद्यांगों के वर्ण जपाकुसुम, कुन्दपुष्प, पावक, इन्द्रनील, सिन्दूर और हरिताल के सदृश हैं। इसी तरह शक्ति के हृदय आदि अंगों के वर्ण नील, पीत, श्याम, रक्त, कृष्ण और मरकतसदृश हैं। अब छः सामान्य अंगों के वर्णों का क्रम बताया जा रहा है। इनके वर्ण क्रमशः स्फटिकसदृश, रक्त, पीत, श्याम, कांचन और अरुण हैं। इस प्रकार शिवांग आदि षड्विध अंगों में स्थित हृदय आदि षड्विध अंगों के षड्विध वर्णों का क्रमशः यहाँ वर्णन किया गया है।।५४-५७।।

चार भुजा और तीन नेत्रों से सुशोभित, जटा और मुकुट से मंडित, सभी लक्षणों से समन्वित और सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित, दक्षिण के दो हाथों में त्रिशूल और अभय मुद्रा तथा बायें दो हाथों में कपाल और वरमुद्रा को धारण किये, हार, केयूर, कटक और कुण्डल से सुशोभित, हृदय आदि अंगों से लेकर उनके वर्णों तक वर्णित यह स्वरूप सौम्य माना गया है। बाकी सभी स्वरूप रौद्र माने गये हैं।।५८-६०।।

हृदादिवर्मपर्यन्तं स्वरूपं सौम्यमुच्यते ।
शेषा रौद्रा इति ज्ञेयाः सर्वेषां रूपमीरितम् ।।६०।।

यजनम्

शिवाङ्गैस्तु यजेद् देवं स्थापनादीनि सर्वशः ।
भूताङ्गैश्चैव षड्वक्त्र पादादिभूतशोधनम् ।।६१।।
अणौ नामानि संयोज्य भूताङ्गेषु समाचरेत् ।
कूटाङ्गैश्चैव विद्याङ्गैः प्रायश्चित्तं तु कारयेत् ।।६२।।
शक्तीनां स्थापनाकाले शक्त्यङ्गैस्तु समाचरेत् ।
अन्येषां सर्वदेवानां सामान्याङ्गैस्तु योजयेत् ।।६३।।
एवं षडङ्गमाख्यातं विशेषस्त्वधुनोच्यते ।

पञ्चधा हृदयम्

केवलं ज्ञानजं चैव योगजं भूतजं तथा ।।६४।।
कामदं च क्रमेणैव हृदयं पञ्चधा भवेत् ।
शिवाङ्गं हृदयं यत्तु केवलं समुदाहृतम् ।।६५।।

षड्विध शिवांगों से इष्टदेवता की पूजा की जाती है और प्रतिष्ठा आदि क्रियाओं को सम्पन्न किया जाता है। हे षण्मुख ! भूतांगों से पाद से मस्तक पर्यन्त स्थित भूतों की शुद्धि की जाती है। यहाँ मन्त्रोच्चारण के साथ भूतों के नामों का भी संयोजन किया जाता है। कूटांग और विद्यांग मन्त्रों का विनियोग प्रायश्चित्त के लिये किया जाता है। उमा आदि शक्तियों की स्थापना करते समय शक्त्यंग मन्त्रों का और अन्य देवताओं की स्थापना में सामान्यांग मन्त्रों का उपयोग किया जाता है। इस तरह से षडंग मन्त्रों का यहाँ सामान्य विधान बताया गया है।।६१-६४।।

अब इनका विशेष विधान बताया जा रहा है। केवल, ज्ञानज, योगज, भूतज और कामज के भेद से हृदय के पाँच भेद होते हैं। इनमें शिवांग के रूप में वर्णित **हाँ** बीज को केवलहृदय कहा जाता है। सान्त हकार को यान्त रेफ, आदिवर्गान्त औकार और बिन्दु से संयुक्त करने पर जो **हौं**-बीज बनता है, उसे ज्ञानजहृदय कहते हैं। भूतान्त हकार को अनिलबीज यकार और अकार स्वर से संयुक्त करने पर **ह्य**-बीज बनता है। इसी तरह से अन्य तत्त्वान्त हकार को अकार से संयुक्त करने पर **ह**-बीज बनेगा। इन दोनों को बिन्दु और नाद से संयुक्त करने पर **ह्यँ हँ** इस तरह से योगजहृदय बीज बनता है।। पंचम हकार को

सान्तं यान्तसमायुक्तमादिवर्गान्तसंयुतम् ।
ज्ञानात्महृदयं बिन्दुः समासात् परिकीर्तितम् ।।६६।।

भूतान्तमनिलोपेतं तत्त्वान्तं स्वरसंयुतम् ।
शिवशक्तिसमायुक्तं योगजं हृदयं विदुः ।।६७।।

पञ्चमं पार्थिवोपेतं द्वितीयस्वरसंयुतम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं भूतजं हृदयं विदुः ।।६८।।

तत्त्वान्तमनिलान्तं च दशान्तान्तकलान्वितम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं हृदयं सर्वकामदम् ।।६९।।

हृदयादि नमोऽन्तं तु सर्वेषां सह योजयेत् ।

हृदयस्वरूपम्

ईशानं प्रथमं विद्याच्छुक्लवर्णमुदाहृतम् ।।७०।।

ईश्वरं ज्ञानहृदयं तप्तकाञ्चनसन्निभम् ।
योगजं ब्रह्मरूपं स्यात् पीतवर्णं तु निर्दिशेत् ।।७१।।

भूतजं चेशरूपं तु रक्तवर्णमुदाहृतम् ।
सादाख्यं कामदं विद्याच्छुद्धस्फटिकसन्निभम् ।।७२।।

विनियोगः

यजनं केवलेनैव स्थापनं ज्ञानजेन तु ।
प्रोक्षणं योगजेनैव दीक्षाकर्म तु भूतजम् ।।७३।।

पार्थिव बीज लकार और द्वितीय स्वर आकार से तथा बिन्दु-नाद से संयुक्त करने पर ह्लाँ-बीज का निर्माण होता है। इसको भूतजहृदय बीज कहते हैं।। तत्त्वान्त हकार को अनिलान्त रेफ और दशान्तान्त कला, अर्थात् ऐकार स्वर से संयोजित करने पर जो ह्रैं-बीज बनता है, उसे कामदहृदय बीज कहते हैं। इन सबके साथ हृदयाय नमः शब्दों को जोड़ना चाहिये। तब उनका यह स्वरूप बनेगा — १. ह्लाँ केवलहृदयाय नमः, २. ह्रौं ज्ञानजहृदयाय नमः, ३. ह्यं हँ योगजहृदयाय नमः, ४. ह्लाँ भूतजहृदयाय नमः, ५. हैं कामदहृदयाय नमः। इनमें प्रथम मन्त्र ईशानस्वरूप और शुक्ल वर्ण का है। दूसरा ईश्वरस्वरूप ज्ञानजहृदय तपे हुए सोने के समान पीत वर्ण का है। तीसरा योगजहृदय ब्रह्मस्वरूप एवं पीत वर्ण का है। चौथा भूतजहृदय ईशस्वरूप एवं रक्त वर्ण का है और पाचवाँ कामदहृदय सादाख्यस्वरूप एवं शुद्ध स्फटिक के सदृश वर्ण का है। इनमें से केवलहृदय से पूजन, ज्ञानज से स्थापन, योगज से प्रोक्षण, भूतज से दीक्षा कर्म और कामद से सभी काम्य कर्मों का अनुष्ठान किया

सर्वकर्म विशेषेण कामदेनैव कारयेत्।
एवं हृदयमाख्यातमस्त्रभेदमथ शृणु ।।७४।।

पञ्चास्त्राणि

शिवास्त्रं क्षुरिकास्त्रं च तथा पाशुपतास्त्रकम्।
व्योमास्त्रं चैवाघोरास्त्रमस्त्रं पञ्चविधं भवेत् ।।७५।।

षडक्षरं शिवास्त्रं स्यात् क्षुरिका त्वष्टवर्णकम्।
पाशुपतं च पञ्चार्णं व्योमास्त्रं तु दशार्णकम् ।।७६।।
चत्वारिंशदघोरास्त्रमेवं पञ्चास्त्रमुच्यते।
सर्वकर्मार्हकं विद्यात् पूजकः सर्वकर्मसु ।।७७।।
शिवाङ्गादि षडङ्गानि कीर्तितानि षडानन।
अङ्गभेदो मयाख्यातो मन्त्रजातमथ शृणु ।।७८।।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रेऽङ्गभेदो नाम
अष्टमः पटलः समाप्तः ।।

जाता है। इस तरह से यहाँ पंचविध हृदय- बीजों का उद्धार बताया गया है।।६४-७४।।

अब अस्त्र मन्त्र के भेदों को बताया जा रहा है। शिवास्त्र, क्षुरिकास्त्र, पाशुपतास्त्र, व्योमास्त्र और अघोरास्त्र के भेद से अस्त्र-मन्त्र पंचविध माने गये हैं। शिवास्त्र छः अक्षरों का, क्षुरिकास्त्र आठ अक्षरों का, पाशुपतास्त्र पांच अक्षरों का, व्योमास्त्र दस अक्षरों का और अघोरास्त्र चालीस अक्षरों का होता है। इस तरह से पंचास्त्र-मन्त्रों की वर्णसंख्या यहाँ बताई गई है। शास्त्र के अनुसार अपने इष्टलिंग की पूजा करने वाला साधक सभी कर्मों में इनका विनियोग कर सकता है, क्योंकि ये अस्त्र-मन्त्र सभी कामनाओं को पूरा करने वाले हैं।।७४-७७।।

इस प्रकार प्रस्तुत पटल में शिवांग आदि षड्विध अंगों का परिचय दिया गया है। अंगभेद का परिचय देने के बाद अब मैं अगले पटल में मन्त्रों का परिचय देने जा रहा हूँ।।७८।।

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का यह अंगभेद नामक
अष्टम पटल पूरा हुआ ।।८।।

❋❋❋

नवमः पटलः

मन्त्रमयलिङ्गोद्धारक्रमः

अथातः संप्रवक्ष्यामि मन्त्रजातविधिं शृणु ।
यस्मान्मन्त्राश्च जायन्ते मन्त्रजातमिति स्मृतम् ।।१।।

तस्मान्मन्त्रमयं लिङ्गं वक्ष्ये संक्षेपतः शृणु ।
सर्वलोकहितार्थाय सर्वप्राणिहिताय च ।।२।।

सर्वमन्त्रप्रसिद्ध्यर्थं भुक्तिमुक्त्यर्थमुच्यते ।
शालिपिष्टाक्तसूत्रेण सूत्रपातमथाचरेत् ।।३।।

गोमयालेपिते क्षेत्रे निम्नोन्नतविवर्जिते ।
प्राक्सूत्राणि सप्तदश तथैवोदग्गतानि च ।।४।।

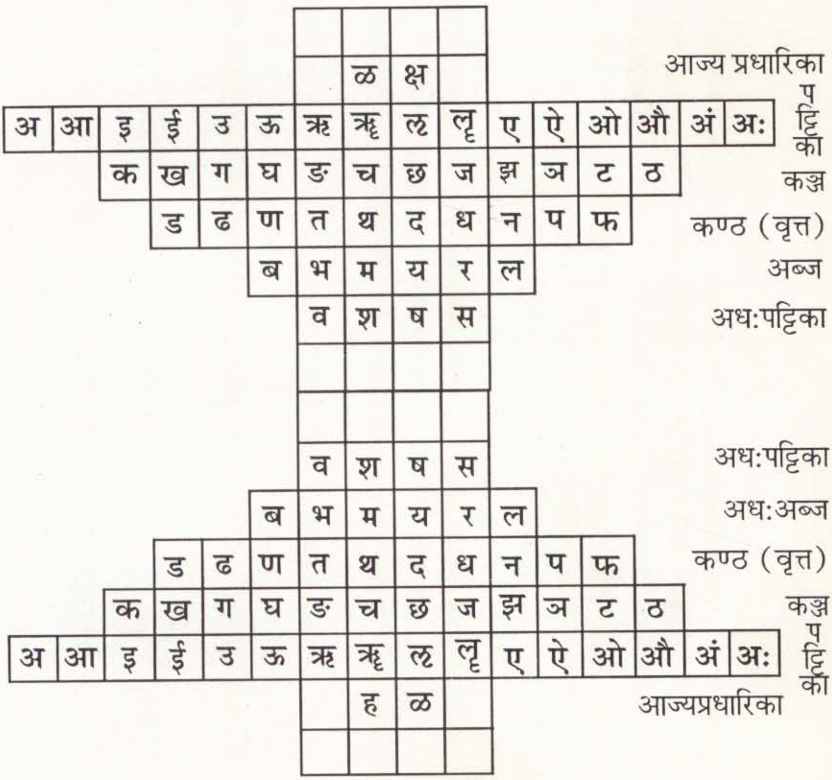
पङ्क्तयः षोडश स्युस्ताः प्रागुत्तरमुखास्तथा ।
षट्पञ्चाशत्समाधिक्यकोष्ठानि द्विशतानि च ।।५।।

पश्चिमादिन्द्रपर्यन्तं लिङ्गार्थं वीथिकास्त्यजेत् ।
पश्चात् चत्वारि चत्वारि वीथ्योः कोष्ठानि मध्यमे ।।६।।

अब मैं मन्त्रजात की विधि को कहूँगा। उसे तुम सावधानी से सुनो। मन्त्रजात का अर्थ है, वह लिंग तत्त्व, जिससे सभी प्रकार के मन्त्रों का उद्धार होता है। इस मन्त्रमय लिंग तत्त्व का स्वरूप ही यहाँ संक्षेप में बताया जा रहा है। समस्त लोकों के और उनमें रहने वाले समस्त प्राणियों के कल्याण के लिये, सभी प्रकार के मन्त्रों का उद्धार करने के लिये तथा सभी प्रकार के भोगों के साथ मुक्ति को प्राप्त कराने में भी ये मन्त्र समर्थ हैं, इसलिये इस प्रकरण का उपदेश किया जा रहा है।।१-३।।

चावल के आटे को धागे में लपेट कर समतल भूमि को गोबर से लीप कर उस पर सूत्रपात करना चाहिये। ऐसा करने से सूत्र (धागे) पर लगे आटे से रेखाएँ बन जाती हैं। पूर्व से पश्चिम तक तथा दक्षिण से उत्तर तक इस तरह सत्रह-सत्रह वार सूत्रपात करने पर पूर्व से पश्चिम तक तथा दक्षिण से उत्तर तक सोलह-सोलह कोष्ठकों का और कुल मिलाकर दो सौ छप्पन कोष्ठकों का निर्माण हो जाता है।।३-५।।

मन्त्रमयलिङ्गोद्धार



संरक्ष्य पार्श्वद्वितये षट् षट् कोष्ठानि लोपयेत् ।
तदूर्ध्वपङ्क्तिं संरक्ष्य तदूर्ध्वे द्वादश क्षिपेत् ।।७।।

पार्श्वयोरुभयोस्तत्र द्वे द्वे कोष्ठे च लोपयेत् ।
तदूर्ध्वे दश कोष्ठानि रक्षेत् पार्श्वत्रयं त्यजेत् ।।८।।

ततः षट्कोष्ठकं रक्षेत् पार्श्वयोः पञ्च पञ्च च ।
लोपयेच्च तदूर्ध्वे तु रक्षेच्चत्वारि पार्श्वयोः ।।९।।

षट्षट्कोष्ठानि संत्यज्य तदूर्ध्वे तद्वदाचरेत् ।
ततः षट्कोष्ठकं रक्षेत् पार्श्वयोः पञ्च लोपयेत् ।।१०।।

तदूर्ध्वे दश संरक्ष्य पार्श्वयोस्त्रीणि लोपयेत् ।
तदूर्ध्वे द्वादशं रक्षेद् द्वे द्वे पार्श्वे च लोपयेत् ।।११।।

तदूर्ध्वपङ्क्तिं संरक्ष्य ततो लिङ्गं द्विपङ्क्तितः ।
पङ्क्त्योश्चत्वारि चत्वारि कोष्ठान्यूर्ध्वे च रक्षयेत् ।।१२।।

इनमें पश्चिम दिशा से लेकर पूर्व दिशा तक की वीथिकाओं को लिंग के निर्माण के लिये छोड़ दे। बाद में इन सोलह पंक्तियों के बीच की दो दो वीथियों के चार चार कोष्ठकों को सुरक्षित रखकर इनके दोनों तरफ के छः छः कोष्ठकों को मिटा दे। इन मिटाई गई दोनों पंक्तियों के ऊपर जो पंक्ति विद्यमान है, उसे सुरक्षित रखकर उसके ऊपर के बारह कोष्ठकों को रहने दे। यह सुरक्षित बारह कोष्ठक वाली पंक्ति के दोनों तरफ के दो दो काष्ठकों को मिटा दे। उस बारह कोष्ठक (पद) वाली पंक्ति के ऊपर वाली पंक्ति के दस पदों को सुरक्षित रखकर उस पंक्ति के दोनों तरफ के तीन तीन कोष्ठकों को मिटा दे। इसके बाद दस पद वाली पंक्ति के ऊपर की पंक्ति में स्थित छः पदों को सुरक्षित कर उस पंक्ति के दोनों तरफ के पाँच-पाँच पदों को मिटा दे। इसके ऊपर वाली पंक्ति के चार पदों को रखकर उसकी दोनों तरफ के छः छः पदों को मिटा दे। इसके ऊपर की पंक्ति में भी पूर्ववत् चार-चार पदों को रखकर उसकी दोनों तरफ के छः छः पदों को मिटा दे। इसके बाद पूर्व में सुरक्षित चतुष्पद पंक्ति के ऊपर वाली पंक्ति के छः पदों को रखकर उसकी दोनों तरफ के पाँच-पाँच कोष्ठकों (पदों) को मिटा दे। पूर्व में सुरक्षित षट्पद वाली पंक्ति के ऊपर दस पदों को सुरक्षित रखकर उस पंक्ति के दोनों तरफ के तीन-तीन कोष्ठकों को मिटा दे। उस दस पदों वाली पंक्ति के ऊपर की पंक्ति के बारह पदों को बचा कर उसकी दोनों तरफ के दो दो पदों को मिटा दे। इसी तरह इस बारह पदों वाली पंक्ति की ऊपर वाली पंक्ति के सभी सोलह पदों को सुरक्षित रख ले। ऊपर की दो पंक्तियों से लिंग का आकार स्पष्ट हो जाता है। पूर्व में सुरक्षित सोलह पदों वाली पंक्ति के ऊपर की दोनों पंक्तियों के चार-चार पदों का बचाकर उन दोनों पंक्तियों की दोनों तरफ के छः छः पदों को मिटा दिया जाता है। इस

षट्षट्कोष्ठानि पङ्क्त्योश्च पार्श्वयोरुभयोस्त्यजेत् ।
एवं लिङ्गं समासाद्य ब्रह्मविष्ण्वीशपीठकम् ।।१३।।

लिङ्गपीठषडङ्गानि

पट्टिकाकञ्जकण्ठाब्जपट्टिकाज्यप्रधारिका: ।
षडङ्गानि च पीठस्य क्रमात् प्रोक्तानि षण्मुख ।।१४।।

लिङ्गे मन्त्रन्यासक्रम:

मन्त्रन्यासक्रमं लिङ्गे शृणु वत्स समासत: ।
अङ्गभेदे षडङ्गानि प्रोक्तमन्त्राणि विन्यसेत् ।।१५।।

हृदयं पट्टिकायां तु शिर: कञ्जे शिखां गले ।
कवचं कमले नेत्रं पट्यामस्त्रं च धारिके ।।१६।।

प्रोक्त: षडङ्गविन्यासो वक्ष्याम्याधारषट् क्रमात् ।

षट्चक्रन्यासक्रम:

कञ्जस्य चाध आधारं वादिसान्तं चतुर्दले ।।१७।।

स्वाधिष्ठाने च षट्पत्रे बादिलान्तं क्रमान्न्यसेत् ।
ततो मणौ दशदले डादिफान्तं न्यसेत् तत: ।।१८।।

तरह से यहाँ बताई गई विधि के अनुसार सृष्टि-स्थिति-संहार के कर्ता ब्रह्म-विष्णु-महेश स्वरूप लिंग का आकार बन जाता है।।६-१३।।

हे षण्मुख ! इस लिंगपीठ के अध:पट्टिका, अध:कंज, कण्ठ, ऊर्ध्वाब्ज, ऊर्ध्वपट्टिका और आज्यप्रधारिका नामक छ: अंग शास्त्रों में बताये गये हैं। इस लिंग में मन्त्रों के न्यास के प्रकार को अब मैं संक्षेप में बता रहा हूँ, उसे तुम ध्यान से सुनो। पूर्वोक्त अंगभेद नामक अष्टम पटल में षडंग मन्त्रों का स्वरूप बताया गया है। उनके विन्यास का क्रम यहाँ बताया जा रहा है। अध:-पट्टिका में हृदय मन्त्र का, अध:कमल में शिरोमन्त्र का, वृत्तस्थान में शिखा मन्त्र का, ऊर्ध्वकमल में कवच मन्त्र का, ऊर्ध्वपट्टिका में नेत्र मन्त्र का और आज्यप्रधारिका में अस्त्र मन्त्र का विन्यास किया जाता है।।१४-१६।।

इस तरह से षडंग-मन्त्रों के न्यास का प्रकार बताया गया है। अब षड्विध आधारों के न्यास का क्रम बताया जा रहा है। अध:पट्टिका को यहाँ आधार-स्थान माना गया है। चार पद वाले इस चतुर्दल कमल में व श ष स इन चार वर्णों की स्थिति रहती है। छ: पत्र वाले स्वाधिष्ठान चक्र की अध:कमल में स्थिति मानी गई है और इसमें बकार से लेकर लकार पर्यन्त वर्णों का विन्यास किया जाता है। इसके ऊपर मणिपूर चक्र के दस दलों में डकार से लेकर फकार पर्यन्त दस वर्णों का विन्यास किया जाता है। बारह दल वाले

हृदये द्वादशदले कादिठान्तं न्यसेत् ततः ।
पट्यां कण्ठे षोडशक आदिवर्गं न्यसेत् ततः ।।१९।।

आज्ञायां द्विदले चोर्ध्वं ळक्षयुग्मं न्यसेत् ततः ।
एतानि शिवचक्राणि शक्तिचक्राण्यथो न्यसेत् ।।२०।।

आधारादिगलान्तं च वर्णानि पूर्ववन्न्यसेत् ।
आज्ञायां तु विशेषोऽस्ति शक्तिपक्षे हळे शृणु ।।२१।।

वर्णाधिदेवतास्तत्र पूर्ववत् परिकल्पयेत् ।
एवं षट्चक्रमाख्यातं मूर्तिमन्त्रं न्यसेत् ततः ।।२२।।

मूर्तिमन्त्रन्यासक्रमः

नादं लिङ्गे च विन्यस्य बिन्दुमाज्यप्रधारिके ।
पट्यादिकञ्जपर्यन्तं मकारं विन्यसेत् ततः ।।२३।।

वृत्ते तूकारं विन्यस्य अकारं कञ्जपट्टके ।
सूक्ष्मपञ्चाक्षरं प्रोक्तं स्थूलपञ्चाक्षरं शृणु ।।२४।।

हृदयकमल में ककार से लेकर ठकार पर्यन्त बारह वर्णों का विन्यास किया जाता है। सोलह वर्णों वाले कण्ठचक्र की ऊर्ध्वपट्टिका में स्थिति है। यहाँ अकार आदि सोलह स्वरों का विन्यास किया जाता है। दो दल वाले आज्ञाचक्र की स्थिति आज्यधारिका में मानी गई है। यहाँ ळ और क्ष नामक दो वर्णों का विन्यास किया जाता है। इस तरह से यहाँ षट्चक्रों में विन्यस्त इक्यावन वर्ण मुख्य रूप से रुद्रबीज माने गये हैं।।१७-२०।।

इन वर्णों का शक्तिचक्र के रूप में भी न्यास किया जाता है। उसकी विधि सुनो। आधार आदि चक्रों में इन वर्णों का विन्यास पूर्ववत् किया जाता है। केवल आज्ञाचक्र में वर्णों के न्यास में यह विशेषता बताई गई है कि यहाँ ळ और क्ष के स्थान पर ह और ळ वर्णों का न्यास किया जाता है। इन द्विविध वर्णों के अधिपति देवता चक्रभेद नामक तृतीय पटल में बता दिये गये हैं। इस तरह से षड्विध आधारों में वर्णों का विन्यास किया जाता है।।२०-२२।।

अब मूर्तिमन्त्र के न्यास का प्रकार बताया जा रहा है। नाद नामक हकार का न्यास आज्यधारिका पंक्ति के ऊपर के चार पदों में किया जाता है। आज्यधारिका में बिन्दु=प्रणव (ओङ्कार) का न्यास करके तब ऊर्ध्वपट्टिका से लेकर ऊर्ध्वकमल पर्यन्त मकार का न्यास किया जाता है। इसके बाद वृत्त नामक कण्ठस्थान में उकार का न्यास कर नीचे की कंजपट्टिका में अकार को रखा जाता है। इस तरह से सूक्ष्म पंचाक्षरों का न्यास सम्पन्न होता है।।२२-

नकारादियकारान्तं पञ्चार्णं तत्र विन्यसेत् ।
पञ्चाक्षरमिदं प्रोक्तं षडक्षरमथोच्यते ।।२५।।

तारं लिङ्गे प्रविन्यस्य पट्टिकायां नकारकम् ।
मकारमूर्ध्वकञ्जे तु शिकारं वृत्तमध्यके ।।२६।।

अधःकञ्जे च वाकारमधःपट्यां यकारकम् ।
एवं षडक्षरं प्रोक्तं षडध्वन्यास उच्यते ।।२७।।

षडध्वन्यासक्रमः

जगत्यां भुवनाध्वानं पदाध्वानं च पङ्कजे ।
वर्णाध्वानं च वृत्ते तु कलाध्वानं च पङ्कजे ।।२८।।

तत्त्वाध्वानं पट्टिकायां मन्त्राध्वानं प्रधारिके ।
एवं षडध्वकं न्यस्य सर्वमन्त्रात्मकं शिवम् ।।२९।।

सप्तकोटिमहामन्त्रैर्मन्त्रितं लिङ्गमुच्यते ।
ज्ञात्वा समर्चयेन्मन्त्री अन्यथा निष्फलं भवेत् ।।३०।।

कामिकादिषु तन्त्रेषु अष्टाविंशतिभेदतः ।
प्रोक्तानि मन्त्रजातानि तत्सर्वं विन्यसेद् बुधः ।।३१।।

२५॥

अब स्थूल पंचाक्षरों के न्यास का प्रकार बताया जा रहा है। नकार से लेकर यकार पर्यन्त पंचाक्षरों का यहाँ न्यास करने पर **नमः शिवाय** यह पंचाक्षर मन्त्र बनता है। पंचाक्षर मन्त्र के उद्धार की यह प्रक्रिया है। अब षडक्षर मन्त्र का उद्धार बताया जा रहा है। तार, अर्थात् प्रणव-स्वरूप ॐकार का शिवलिंग में न्यास कर के ऊर्ध्वपट्टिका में नकार का न्यास करे। ऊर्ध्व कमल में मकार को, वृत्त के मध्य में शिकार को, अधःकमल में वाकार को और अधःपट्टिका में यकार को रखने पर **ॐ नमः शिवाय** इस षडक्षर मन्त्र का स्वरूप बनता है॥२५-२७॥

अब षडध्वन्यास का प्रकार बताया जा रहा है। आधारपंकज में भुवनाध्वा का, अधःपंकज में पदाध्वा का, वृत्त (कण्ठ) स्थान में वर्णाध्वा का, ऊर्ध्वपंकज में कलाध्वा का, ऊर्ध्वपट्टिका में तत्त्वाध्वा का और आज्यप्रधारिका में मन्त्राध्वा का न्यास करना चाहिये। इस तरह से इन सभी मन्त्रों का न्यास करने से शिवलिंग की सर्वमन्त्रात्मकता स्थापित हो जाती है। यह शिवलिंग सात करोड़ महामन्त्रों से अभिमन्त्रित माना जाता है। शिवलिंग के इस स्वरूप को जान लेने के उपरान्त ही आराधक को इसकी पूजा करनी चाहिये। अन्यथा पूजा निष्फल हो जाती है। कामिक आदि तन्त्रों के रूप में २८ भेद वाले सिद्धान्तशास्त्र

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मन्त्रजातमिदं मतम् ।

मन्त्रभेदाः

अतिबालं सबालं च कौमारं च त्रिकोणकम् ।।३२।।
यौवनं चैव जातीनां प्रकृतिर्विकृतिस्तथा ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रजातिरनन्तरम् ।।३३।।
स्त्रीपुंनपुंसकं चैव चलनस्थानमासनम् ।
शुद्धं मिश्रं तु संकीर्णं मन्त्ररूपमथ शृणु ।।३४।।

तेषां लक्षणानि

शुद्धं चाकारसंयुक्तमतिबालं प्रकीर्तितम् ।
अष्टबीजसमायुक्तं सबालमिति कीर्तितम् ।।३५।।
पञ्चाक्षरसमायुक्तं कौमारं तु प्रकीर्तितम् ।
यौवनं चैव सर्वेषां मन्त्रजातं प्रकीर्तितम् ।।३६।।
शिवाक्षरं ब्राह्मणानां पञ्चाक्षरं नृपस्य च ।
षडक्षरसमायुक्तं वैश्यशूद्रं प्रकीर्तितम् ।।३७।।

में जिन मन्त्रों का स्वरूप बताया गया है, उन सबको जानकर बुद्धिमान् साधक को चाहिये कि उन सबका विन्यास इस शिवलिंग में करे। इसीलिये इस शिवलिंग को मन्त्रजात कहा जाता है, अर्थात् इसमें सभी मन्त्रों का निवास है और समस्त मन्त्रों का उद्धार भी इसीकी सहायता से किया जाता है।।२७-३२।।

अतिबाल, सबाल, कौमार, त्रिकोण, यौवन, जाति, प्रकृति, विकृति, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, चलन, स्थान, आसन, शुद्ध, मिश्र और संकीर्ण — ये सब विभिन्न मन्त्रों के नाम हैं। इनके स्वरूप का वर्णन आगे किया जा रहा है।।३२-३४।।

अकार से संयुक्त शुद्धप्रासाद मन्त्र को **अतिबाल** कहा जाता है। आठ बीजों से संयुक्त मन्त्र को **सबाल** कहते हैं। पाँच अक्षरों वाला मन्त्र **कौमार** कहलाता है। सभी देवताओं के मन्त्र **यौवन** नाम से जाने जाते हैं। एक अक्षर वाला मन्त्र **ब्राह्मणों** का, पाँच अक्षर वाला **क्षत्रियों** का और छः अक्षर का मन्त्र **वैश्यों** और **शूद्रों** का माना गया है। इस तरह से यहाँ ये चारों जातियों के मन्त्र बताये गये हैं। स्वाहान्त मन्त्र **स्त्रीलिंग**, नमोऽन्त **पुलिंग** और फट्कार एवं वषट्कार से संयुक्त मन्त्र **नपुंसक** माने गये हैं। स्वाहान्त मन्त्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण का तथा नमोऽन्त मन्त्र शूद्र वर्ण का माना गया है। इस मन्त्र-समूह की इन्द्र आदि लोकों में **स्थिति** (स्थान) और **आसन** माने गये हैं। एकाक्षर मन्त्र को **शुद्ध**, चार अक्षर वाले मन्त्र को **मिश्र** और नाना वर्णों से संयुक्त मन्त्र को **संकीर्ण** कहा जाता

एवं क्रमेण निर्णीतं चतुर्थ्यन्तं प्रकीर्तितम् ।
स्वाहाकारो भवेन्नारी नमोऽन्तं पुरुषाकृतिः ।।३८।।
फट्कारं च वषट्कारं नपुंसकमिति स्मृतम् ।
विप्रं स्वाहान्तकं प्रोक्तं नृपवैश्यादिसंयुतम् ।।३९।।
इन्द्रादिशयनस्थानं मन्त्रजातं प्रकीर्तितम् ।
शुद्धमेकाक्षरं प्रोक्तं वेदाक्षरं तु मिश्रकम् ।।४०।।
संकीर्णो बहुवर्णश्च त्रिविधो मन्त्र ईरितः ।

मन्त्रशरीरवर्णनम्

मन्त्रादौ शीर्षकं प्रोक्तं मन्त्रोर्ध्वे वदनं मतम् ।।४१।।
मन्त्रपार्श्वे तु बाहू च तस्याप्यधरसंयुतम् ।
पार्श्वे तु चक्षुः श्रोत्रं च चक्षुर्मध्ये च नासिका ।।४२।।
तस्या ऊर्ध्वे ललाटं च बिन्दुर्मस्तकमुच्यते ।
नादो जिह्वा समाख्यातः शब्दः शब्द इति स्मृतः ।।४३।।
ओष्ठः शब्देन भिन्नः स्यादास्यान्तरसमन्वितः ।
वाग्भवं मन्त्रमित्याहुरोष्ठान्तं कण्ठ एव च ।।४४।।
पौरुषं रूपमेवं हि वासवाहनमुच्यते ।
प्रणवान्तसमायुक्तं मन्त्रान्ते च प्रतिष्ठितम् ।।४५।।
मन्त्ररूपमिदं प्रोक्तं मन्त्रवासस्तथोच्यते ।

मन्त्रवासनिरूपणम्

मन्त्राणां प्रकृतिर्वासो वाहनं विकृतिस्तथा ।।४६।।

है। मन्त्रों के इस रूप में भी तीन भेद हो जाते हैं।।३५-४१।।

मन्त्र का आदि भाग शिर, ऊर्ध्व भाग वदन और दोनों पार्श्व भाग बाहू कहलाते हैं। अधर की भी यहीं स्थिति मानी गई है। मन्त्र के दोनों पार्श्वों में चक्षु और श्रोत्र एवं इन चारों के बीच में नासिका स्थित है। नासिका के ऊपर ललाट और उसके ऊपर मस्तक की स्थिति मानी गई है। मन्त्र में स्थित नाद ही जिह्वा है। जिह्वा से उच्चरित वर्णात्मक ध्वनि ही शब्द है। यह शब्द मुँह में स्थित सामान्य शब्द से भिन्न माना गया है। वाग्भव को मन्त्र का मुख माना गया है। मन्त्र का यह आकार मानव-शरीर की तुलना करता है। अब मन्त्र के वास-स्थान और वाहन का स्वरूप बताया जा रहा है।।४१-४५।।

मन्त्र के आदि में स्थित प्रणव से लेकर मन्त्र के अन्त में संयोजित नमः, स्वाहा आदि तक का भाग मन्त्र का स्वरूप माना गया है। मन्त्रगत प्रकृतिसंज्ञक वर्ण मन्त्रों के वासस्थान और विकृतिसंज्ञक वर्ण मन्त्रों के वाहन माने गये हैं। मन्त्रों की वासस्थान- रूप प्रकृति ही

प्रकृतिर्वर्णभावश्च वर्णानां वासजिह्वया ।
आस्ये च जिह्वावासश्च आस्यानां बुद्धिवासनम् ।।४७।।
बुद्ध्यर्णं हृदये वासं हृदयं पिण्डवासनम् ।
पिण्डार्णवासो नाड्यां तु नाडीनां वायुवासनम् ।।४८।।
वायुवासश्च शक्तीनां शक्तिवासश्च वै शिवः ।
शिववासश्च सर्वेषां मन्त्रवासः प्रकीर्तितः ।।४९।।
मन्त्रवासो मया प्रोक्तो मन्त्रवाहनमुच्यते ।

मन्त्रवाहननिरूपणम्

लिङ्गे च प्रतिमाकुम्भे वास्तौ वह्नौ च मूलके ।।५०।।
अन्यकुम्भे च वास्ये च युक्तं मन्त्रस्य वाहनम् ।
एवं नवदशं प्रोक्तं मन्त्रजातस्य लक्षणम् ।।५१।।
मन्त्रजातमिदं प्रोक्तं मन्त्रकीलमथ शृणु ।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे मन्त्रजातं नाम
नवमः पटलः समाप्तः ।।९।।

वर्ण कहलाती है और जिह्वा में इनका निवास होने से जिह्वा को ही मन्त्रों का वासस्थान माना गया है। यह जिह्वा मुख में स्थित है। इसका संचालन बुद्धि से होता है और शब्द से अनुविद्ध बुद्धि का संचालन हृदय से होता है। इसी तरह से बुद्धि के संचालक हृदय का वासस्थान पिण्डाक्षर माना गया है। इन पिण्डाक्षरों का संचालन नाडी से और नाडी का संचालन वायु से होता है। वायु का संचालन शक्ति से होता है और शक्ति के संचालक भगवान् शिव हैं। इस प्रकार अन्ततः समस्त मन्त्रों के वासस्थान के रूप में भगवान् शिव ही मान्य हैं, यह विषय यहाँ बताया गया है।।४५-४९।।

इस प्रकार से मन्त्रों के वासस्थान का निरूपण यहाँ किया गया है। अब मन्त्रों के वाहनों के विषय में बताया जा रहा है। लिंग, प्रतिमा, कुंभ, वास्तु, वह्नि, मूलस्थान, दीक्षाकाल में स्थापित कुंभ तथा अन्य वासयोग्य वस्तु — ये सब मन्त्र के वाहन माने गये हैं।।५०-५१।।

इस तरह से इस मन्त्रजात पटल में १९ प्रकार के मन्त्रों के स्वरूप का विवरण दिया गया है। अब आगे मन्त्रकील नामक पटल को सुनाया जा रहा है। हे षणमुख ! उसे तुम सावधानी से सुनो।।५१-५२।।

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का यह मन्त्रजात नामक
नवम पटल पूरा हुआ ।।९।।

❋ ❋ ❋

दशमः पटलः

कीलमन्त्रविसर्जनम्

अथातः संप्रवक्ष्यामि मन्त्रकीलमथ शृणु ।
अकीलं कीलमित्युक्तं कीलमन्त्रं विसर्जयेत् ।।१।।
नेत्रे ललाटं वक्षश्च श्रोत्रे चास्यं च नासिके ।
पादौ बाहू च देहश्च मन्त्र उच्चार्यते बुधैः ।।२।।
अतिदीर्घायते वृत्तमथ दीर्घं च वृत्तकम् ।
अर्धचन्द्रसमाकारं नाद आयान्तनादवत् ।।३।।

भक्तिस्थानानि

गुरौ लिङ्गेऽक्षमालायां मन्त्रे भस्मनि पञ्चसु ।
एतासु शिवमुद्रासु शिववद् भक्तिमाचरेत् ।।४।।
आत्मीयान् विविधान् भोगान् स्त्रीपुत्रप्रमुखानपि ।
स्वात्मानं चित्तबुद्धी च तेषां च वशमानयेत् ।।५।।

अब मैं मन्त्रकील प्रकरण को कहूँगा, उसे तुम सावधानी से सुनो। अकील और कील के भेद से मन्त्र दो प्रकार के होते हैं। इनमें से कीलित मन्त्र का परित्याग कर देना चाहिये। इसका भाव यह भी है कि यदि ऐसे मन्त्रों का ग्रहण आवश्यक हो, तो तन्त्रशास्त्र में बताई विधि से उसका उत्कीलन करना चाहिये।।१।।

यह नेत्र-मन्त्र है, यह ललाट-मन्त्र है, यह वक्ष का मन्त्र है, यह श्रोत्र-मन्त्र है, यह आस्य-मन्त्र है, यह नासिका-मन्त्र है, यह पाद-मन्त्र है, यह हस्त-मन्त्र है, यह देह- मन्त्र है, इन सब विभागों को भलीभाँति जान लेने के उपरान्त ही बुद्धिमान् साधक मन्त्रों का उच्चारण करता है। मन्त्र-वृत्त दीर्घ से दीर्घतर होता रहता है। मन्त्र की इस दीर्घ आय को घुमाकर अर्धचन्द्र का आकार दिया जाता है। मन्त्र से निकलने वाली ध्वनि के समान मन्त्रनाद साक्षात् नादस्वरूप रहता है।।२-३।।

गुरु के प्रति, लिंग, अक्षमाला, मन्त्र और भस्म के प्रति भगवान् शिव के समान ही भक्ति प्रदर्शित करनी चाहिये, क्योंकि इन पाँचों शिवमुद्राओं को शिवस्वरूप ही माना जाता है। अपने विविध भोगों को, अधिक क्या, स्त्री-पुत्र जैसे स्वजनों और स्वयं अपने आप को भी, अपने मन और बुद्धि को भी उन सबके वश में कर देना चाहिये। जो व्यक्ति

यो भेदं भक्तिमान् भक्तस्तेषु मोहात् करोति च ।
शिवद्रोहीति विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ।।६।।

शैवभेदाः

शैवं चतुर्विधं ज्ञेयं समासाच्छृणु षण्मुख ।
सामान्यं मिश्रकं चैव शुद्धं वीरं यथाक्रमम् ।।७।।
तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि शैवसामान्यलक्षणम् ।

१. सामान्यशैवलक्षणम्

शिवलिङ्गं यदा पश्येत् तदा कुर्यात् समर्चनम् ।।८।।
प्रदक्षिणं वा प्रणतिं दर्शनं वात्र कारयेत् ।
भस्मधारणमात्रेण शुद्धो भवति सर्वदा ।।९।।
शिवकीर्तौ तदालापे प्रीतिमान् शिवभक्तके ।
एतेषां नियतिर्नास्ति यथालब्धं समाचरेत् ।।१०।।
सामान्यलक्षणं प्रोक्तं वक्ष्ये मिश्रस्य लक्षणम् ।

२. मिश्रशैवलक्षणम्

शैवं च वैष्णवं शाक्तं कौमारं गाणपत्यकम् ।।११।।

मोहवश इन सबको भगवान् शिव से भिन्न मानता है, वह शिवद्रोही माना जाता है, उसे शिवपूजन आदि सभी कार्यों से बहिष्कृत कर देना चाहिये।।४-६।।

शैवों के चार भेद माने गये हैं। हे षण्मुख ! इनके विषय में संक्षेप में तुम्हें जानकारी दे रहा हूँ। सामान्य, मिश्र, शुद्ध और वीर — ये इनके नाम हैं। इनमें से सबसे पहले सामान्य शैव का लक्षण तुम्हें बता रहा हूँ। सामान्यशैव जब भी शिवलिंग को देखता है, उसकी पूजा करता है, प्रदक्षिणा करता है, प्रणाम करता है अथवा आदरभाव प्रकट करता है। यह सामान्यशैव भस्म धारण कर लेने मात्र से शुद्ध हो जाता है। वह शिव की महिमा को गाने में और शिवभक्तों के साथ मिलकर प्रेमपूर्वक शिवकथाओं के कहने में सदा लगा रहता है। ऐसे शिवभक्तों का कोई निश्चित कार्यक्रम निर्धारित नहीं रहता। ये यथावसर शिवपूजन आदि में लगे रहते हैं।।७-१०।।

सामान्यशैव का लक्षण बताने के बाद अब मैं मिश्रशैव का लक्षण बता रहा हूँ। मिश्रशैव शिव, विष्णु, शक्ति, स्कन्द, गणपति, सूर्य आदि सभी देवताओं की उन-उन सम्प्रदायों में प्रदर्शित विधि से आराधना करते हैं। इस सभी देवताओं के मन्त्रों का यहाँ शिवपूजा के

सौरं चाखिलदैवत्यं पूजनं च समाचरेत्।
एतेषूक्तेषु सर्वेषु तत्तन्मन्त्रेषु मिश्रितान् ॥१२॥
समभक्तिसमायुक्तः सर्वान् लिङ्गेन भावयेत्।
मिश्रशैवमिति प्रोक्तं शुद्धशैवमथ शृणु ॥१३॥

३. शुद्धशैवलक्षणम्

शुद्धत्वं शिवमुद्दिष्टं शिवाज्जातं तु शैवकम्।
शुद्धशैवसमायोगाच्छुद्धशैवमिति स्मृतम् ॥१४॥
शिवेनोत्पद्यते शैवस्तस्माज्जातः शिवद्विजः।
कामिकादिषु शास्त्रेषु अष्टाविंशतिषु क्रमात् ॥१५॥
वेदशास्त्रादिविद्यासु कृताभ्यासः शिवव्रती।
कर्षणादिप्रतिष्ठान्तं प्रतिष्ठाद्युत्सवान्तकम् ॥१६॥
उत्सवात् प्रायश्चित्तान्तं ज्ञात्वा सर्वं समाचरेत्।
मन्त्रयन्त्रक्रियामुद्रान्यासावाहनकादिभिः ॥१७॥
उपचारैर्बहुविधैर्लिङ्गं सिंहासने यजेत्।

द्विविधा पूजा

आत्मार्थं च परार्थं च पूजाद्विविधमुच्यते ॥१८॥

बाद स्मार्त पंचायतन पद्धति से उपयोग होने से यह शिवभक्त सबके प्रति समान भक्ति रखता हुआ सबमें शिवलिंग की ही भावना करता है। यही मिश्रशैव का स्वरूप है। अब मैं शुद्धशैव का लक्षण बता रहा हूँ, उसे सुनो॥११-१३॥

मनुष्य की शुद्ध भावना ही शिव कहलाती है। इस शुद्ध शिवभाव से सम्पन्न व्यक्ति शैव कहलाता है। इस प्रकार की शुद्धता और शिवता से सम्पन्न साधक शुद्धशैव माना गया है। यह शुद्धशैव शिव के उपदेशों का अनुसरण करता है। इसी मत में शिवद्विजों की उत्पत्ति मानी गई है। ये शिवद्विज कामिक आदि अट्ठाईस सिद्धान्तागमों के साथ वेदशास्त्र आदि विद्याओं का भी अभ्यास करते हैं और शिवपूजा में सदा लगे रहते हैं। शैवागमोक्त विधि से भूमि-कर्षण से लेकर देव-प्रतिष्ठा पर्यन्त, प्रतिष्ठा से लेकर उत्सव पर्यन्त और उत्सव से लेकर प्रायश्चित्त पर्यन्त समस्त विधि-विधान को जानकर इनका अनुष्ठान करते हैं। मन्त्र, यन्त्र, मुद्रा, न्यास आवाहन आदि क्रियाओं के सहारे नाना प्रकार के उपचारों की सहायता से सिंहासन पर स्थापित शिवलिंग का पूजन करते हैं।

आत्मार्थ और परार्थ के भेद से यह शिवपूजा दो प्रकार की होती है। गुरु के द्वारा प्रदत्त लिंग में, स्थण्डिल पर स्थापित शिवलिंग में अथवा अपने भीतर हृदय में स्थापित

दत्ते च गुरुणा लिङ्गे स्थण्डिले स्वयमात्मनि ।
आत्मार्थमिदमाख्यातं परार्थं तु ततः शृणु ।।१९।।

ग्रामादौ स्थापिते लिङ्गे यद्वा देवादिनिर्मिते ।
परार्थमिति विज्ञेयं सर्वप्राणिहितावहम् ।।२०।।

शिवद्विजेन कर्तव्या द्विधा पूजेति चोदिता ।
अन्येषां स्वार्थयजनं न कुर्यात्तु परार्थकम् ।।२१।।

मोहाल्लोभाच्च कुर्वीत राज्ञो राष्ट्रस्य दुःस्थितिः ।
शिवावरणदेवांश्च नित्यं संपूजयेद् गुह ।।२२।।

पृथक्स्थानस्थिताः सर्वा नार्चयेदन्यदेवताः ।
मन्त्रपिण्डहृदम्भोजे वासमन्त्रस्य भावतः ।।२३।।

आवाहनात् समायुक्ते लिङ्गे पूजादिकं चरेत् ।
मन्त्रलिङ्गशरीरः स्यात् स एव परमः शिवः ।।२४।।

शुद्धशैवमिति प्रोक्तं वीरशैवं ततः शृणु ।

४. वीरशैवलक्षणम्

ज्ञानगम्यं रहस्यं च कैवल्यपदकारणम् ।।२५।।

शिवलिंग में की जानेवाली पूजा आत्मार्थ कहलाती है। अब परार्थ पूजा का स्वरूप सुनो। ग्राम आदि में स्थापित लिंग में अथवा देवता आदि के द्वारा स्थापित लिंग में की गई पूजा परार्थ कहलाती है। यह पूजा समस्त प्राणियों के कल्याण के लिये की जाती है। इन दोनों तरह की पूजाओं का अनुष्ठान शिवद्विज करता है। सामान्य जन को आत्मार्थ यजन ही करना चाहिये, वह परार्थ यजन न करें। मोह अथवा लोभवश ऐसा व्यक्ति यदि परार्थ यजन करता है, तो इसके कारण राज्य और राष्ट्र का अहित होता है। हे स्कन्द ! शिवद्विज को शिव के साथ शिव के परिवार के रूप में ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी आवरण देवताओं का भी प्रतिदिन पूजन भलीभाँति करना चाहिये। आवरण देवताओं से भिन्न अन्यत्र स्थापित देवताओं का पूजन यहाँ नहीं किया जाता। अपने हृदय-कमल को सभी शिवमन्त्रों का निवास स्थान मानकर इस अन्तर्लिंग में भावना के सहारे आवाहन आदि समस्त क्रियाकलाप को सम्पन्न करते हुए मानसपूज़ा करनी चाहिये। इस तरह के अनुष्ठान से साधक का समस्त शरीर मन्त्रमय और लिंगमय हो जाता है, वह साक्षात् परमशिव बन जाता है। शुद्धशैव का यही लक्षण है। अब वीरशैव के लक्षण को सुनो॥१४-२५॥

वीरशैव के स्वरूप का बोध केवल स्वानुभूति से ही हो सकता है। यह सर्वथा गोपनीय

वीरशैवमिति ज्ञेयमेतल्लक्षणमुच्यते।
एक एवायमेतस्मिन् सर्वस्मिन् जगतीति यः।।२६।।

विशिष्ट ईर्यते यस्माद् वीर इत्यभिधीयते।
शिवेन सह संबन्धं शैवमित्यादृतं बुधैः।।२७।।

उभयोः सम्पुटीभावाद् वीरशैवमिति स्मृतम्।
शिवार्थार्पितजीवत्वाद् वीरतन्त्रसमुद्भवात्।।२८।।

वीरशैवसमायोगाद् वीरशैवमिति स्मृतम्।
वीरमाहेश्वरं तन्त्रं ज्ञातव्यं त्रिविधं सुत।।२९।।

सामान्यं च विशेषं च निराभारं क्रमाद् भवेत्।
तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि वीरसामान्यलक्षणम्।।३०।।

१. सामान्यवीरशैवः

हस्तमस्तकसंयोगाद् भूतिपट्टस्य धारणात्।
शिवदेहीति विज्ञेयः सर्वपाशैः प्रमुच्यते।।३१।।

गुरुणा दत्तलिङ्गं तु शिवमन्त्रेण धारयेत्।
मूर्ध्नि कण्ठे भुजे हस्ते हृत्स्थले नाभिमण्डले।।३२।।

है और कैवल्यपदवी को प्राप्त कराने वाला है। इस वीरशैव के लक्षण को ही अब बताया जा रहा है। इस समस्त जगत् में समस्त विशिष्ट गुणों से सम्पन्न एकमात्र व्यक्ति ही वीर कहलाता है। यतः इस विशिष्ट वीर का शिव के साथ सदा संबन्ध रहता है, अतः विद्वद्गण इसे शैव कहते हैं। इन दोनों शब्दों के मिलन से **वीरशैव** शब्द बनता है। यह वीरशैव शिव के प्रति अपने सारे जीवन को समर्पित कर देता है, वीरागमों के आधार पर ही इनके दीक्षा आदि सारे संस्कार संपन्न होते हैं और ऊपर बताई गई व्युत्पत्ति के अनुसार वीरशैव शब्द का प्रयोग इसके लिये सार्थक है, इसलिये भी यह साधक वीरशैव कहलाता है। हे पुत्र ! यह वीरमाहेश्वर तन्त्र त्रिविध माना गया है। इनके नाम सामान्य, विशेष और निराभार हैं। अब मैं क्रमशः इनके स्वरूप को बता रहा हूँ।।२५-३०।।

इनमें सामान्य वीरशैव का लक्षण इस प्रकार है — दीक्षा के समय वीरशैवाचार्य गुरु जब अनुग्रहपूर्वक अपने प्रिय परीक्षित शिष्य के मस्तक पर अपना शिवहस्त रखता है, उसके ललाट पर भस्म लगाता है और उसके कन्धों पर दुपट्टा डालता है, तो इस तरह से दीक्षित व्यक्ति ही वीरशैवों की सामान्य दीक्षा से संपन्न माना जाता है। शिवदेही के रूप में इसे मान्यता मिलती है। ऐसा व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है। वह शिवदेही शिष्य

एतेषामेकदेशे तु धारयेच्छिवलिङ्गकम् ।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वा समर्चयेत् ।।३३।।

गुरौ लिङ्गे सदा भक्तिं कारयेद् भसिते व्रती ।
वीरसामान्यमाख्यातं विशेषं च ततः शृणु ।।३४।।

२. विशेषवीरशैवः

शिवकुम्भं समासाद्य स्थण्डिलादिषु पूर्ववत् ।
शिवकुम्भे शिवं पूज्य भक्तानन्नेन तोषयेत् ।।३५।।

शेषं दीक्षोक्तवत् कृत्वा मलपाशादिमोचनम् ।
गुरुः शिष्यं समालोक्य तत्त्वदेहं विचिन्तयेत् ।।३६।।

शिवकुम्भस्थतोयेन अभिषिञ्चेत् शिवाणुना ।
नादं बिन्दुं कलां चैव तत्तत्स्थानेषु विन्यसेत् ।।३७।।

षट्चक्रं च षडङ्गं च षडध्वानं षडानन ।
तत्तत्स्थानेषु विन्यस्य पञ्चब्रह्म न्यसेत् ततः ।।३८।।

गुरु के द्वारा समर्पित शिवलिंग को श्रीमत्पंचाक्षरी मन्त्र के साथ अपने बाह्य और आन्तर देह में धारण करे। मस्तक, कण्ठ, भुजा, हाथ, नाभिस्थान — इनमें से किसी एक स्थान पर उस गुरुप्रदत्त शिवलिंग को धारण करे। प्रातःकाल, प्रातःकाल के साथ सायंकाल अथवा मध्याह्नकाल को भी मिलाकर सन्ध्यावन्दन के समान तीनों कालों में इस शिवलिंग की पूजा करनी चाहिये। गुरु और शिवलिंग के प्रति सदा भस्म- धारण का व्रत रखने वाला साधक भक्तिभावना से परिपूर्ण रहे। यह सामान्य वीरशैव का स्वरूप है। अब विशेष वीरशैव का लक्षण सुनो।।३०-३४।।

वीरशैव दीक्षा को संपन्न करने में समर्थ देशिकोत्तम शुद्धशैव दीक्षा के समय स्थण्डिल आदि शुद्धप्रदेश में स्थापित शिवकलश के पास आकर पहले उस शिवकलश में भगवान् शिव की पूजा करे। बाद में इस पूजा के अवसर पर उपस्थित शिवभक्तों को भोजन करावे। समस्त मलीय पाशों का छेदन करने वाले, दीक्षा के समय किये जाने वाले अन्य समस्त अनुष्ठानों को पूरा करके गुरु शिष्य पर कृपादृष्टि डालकर उसका समस्त देह शिवतत्त्वमय हो जाय, ऐसी भावना करे। शिव-पंचाक्षरी मन्त्र का उच्चारण करते हुए शिवकुंभ में स्थित पवित्र जल से शिष्य के मस्तक पर दूर्वादल की सहायता से जल छिड़के। नाद रूपी शिव, बिन्दुरूपा शक्ति और कलास्वरूप शिवावयवों की शलाका-पीठ के उन उन स्थानों पर स्थापना करे। हे षडानन स्कन्द ! मूलाधार आदि षड्विध चक्रों, सर्वज्ञता आदि षड्विध शिवांगों और भुवनाध्वा आदि षड्विध अध्वाओं का तत्तत् स्थानों पर विन्यास कर सद्योजात आदि

मूलमन्त्रं तूपदिशेत् ततो लिङ्गं प्रदापयेत्।
शेषाणि सर्वकर्माणि दीक्षाध्वोक्तक्रमाच्चरेत्।।३९।।

देहे प्राणं समायोज्य प्राणं लिङ्गे प्रकल्पयेत्।
अविनाभावसंयोगात् तस्मादैक्यं प्रकल्पयेत्।।४०।।

अन्यदृष्टिनिपातं यत् तद् द्रव्यं परिवर्जयेत्।
शुद्धद्रव्यं समासाद्य लिङ्गानां च समर्पणम्।।४१।।

इति व्रतसमायुक्तो वीरशैवो विशिष्यते।
विशेषशैवमाख्यातं निराभारं ततः शृणु।।४२।।

३. निराभारवीरशैवः

सर्वसंसारसौख्यानि त्यक्त्वा चित्तं शिवेऽर्पयेत्।
दण्डकौपीनकाषायजटावल्कलधारकः।।४३।।

मुण्डी वा शिवचिह्नानि धारयेदजिनादिकम्।
भिक्षाशी नियताहारः सुखसंसारवर्जितः।।४४।।

निराभारीति विज्ञेयः स एव परमः शिवः।
वीरमाहेश्वराणां च सामान्यव्रतमुच्यते।।४५।।

पंचब्रह्म मन्त्रों की भी स्थापना करे। इस तरह से दीक्षोक्त समस्त विधिविधानों के संपन्न हो जाने के उपरान्त आचार्य शिष्य को पंचाक्षरी मन्त्र का उपदेश करे और उसे प्राणलिंग प्रदान करे। आगे के समस्त क्रियाकलापों को भी दीक्षापटल में प्रदर्शित विधि से संपन्न करे। शिष्य के देह में इस प्राणलिंग की प्रतिष्ठा कर उसके प्राण में भी लिंगतत्त्व की भावना करे। इस तरह से यहाँ प्राण और लिंग में अविनाभाव संबन्ध से ऐक्यभावना की जाती है। मार्जार, शुनक आदि के द्वारा दृष्ट अपवित्र द्रव्यों का परिहार कर शुद्ध द्रव्यों का उपहार शिव को अर्पित किया जाता है। इस तरह के शास्त्रोक्त व्रतों का पालन करने वाला साधक विशेष वीरशैव कहलाता है। शास्त्रों में यह विशेष वीरशैव का स्वरूप बताया गया है। अब तुम निराभार वीरशैव का लक्षण सुनो।।३५-४२।।

निराभार वीरशैव सभी प्रकार के सांसारिक सुखों का परित्याग कर अपने चित्त को शिवार्पित कर दे। दण्ड, कौपीन, काषाय वस्त्र, जटा और वल्कल धारण कर अथवा मुण्डितमस्तक होकर भस्म, रुद्राक्ष आदि शिवचिह्नों को धारण करे। आसन के रूप में मृगचर्म, व्याघ्रचर्म आदि का ग्रहण करे। भिक्षा से अर्जित अन्न ग्रहण करे, भोजन के समस्त नियमों का पालन करते हुए नियत आहार ग्रहण करे। सभी सांसारिक सुखों का परित्याग कर दे। ऐसा निराभारी वीरशैव साक्षात् परमशिव ही हो जाता है।।४३-४५।।

सामान्यव्रतनिरूपणम्

पूर्वोक्तशिवमुद्रासु तद्धारिषु च सर्वतः ।
अर्थतः प्राणतः प्राज्ञो भक्तिं कुर्याद् दृढां सुत ।।४६।।

पापं तेषु न वक्तव्यं स्वयमेव कदाचन ।
कृते परेण चेत् पापे नोपेक्षेत् करणैस्त्रिभिः ।।४७।।

बलवान् रक्षयेत् तत्र दुर्बलश्चेद् व्रजेत् ततः ।
करणैस्तु विहीनश्चेद् बुद्धिं तत्र न निक्षिपेत् ।।४८।।

स्वीकरोति यदा लिङ्गं गुरुणा दीक्षयाऽणुना ।
तदाप्रभृति लिङ्गैक्यमविनाभावयोगतः ।।४९।।

देहं प्राणेन संस्थाप्य प्राणं लिङ्गेन निक्षिपेत् ।
प्राणेन निक्षिपेल्लिङ्गं पृथग्भावं न कारयेत् ।।५०।।

वीरशैवक्रमः प्रोक्तः प्रायश्चित्तविवर्जितः ।

अब इन त्रिविध वीरमाहेश्वरों के द्वारा पालनीय सामान्य व्रतों का परिचय दिया जा रहा है। पूर्वोक्त सभी प्रकार की शिवमुद्राओं और उनको धारण करने वाले शिवभक्तों के प्रति धन और प्राण के माध्यम से भी बुद्धिमान् शिवाराधक को दृढ भक्ति प्रदर्शित करनी चाहिये। इसे शिवभक्तों के प्रति स्वयं कभी भी कटु वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि अन्य कोई व्यक्ति भगवान् शिव या शिवभक्तों के प्रति इस तरह का बुरा व्यवहार करता है, तो उसकी मन, वचन और शरीर नामक तीनों करणों से कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। यदि वह शिवयोगी बलवान् है, तो उसे आततायियों से शिवभक्तों की रक्षा करनी चाहिये। यदि वह दुर्बल है, तो उसे उस स्थान को छोड़कर दूसरी जगह चले जाना चाहिये। यदि शिवभक्त तीनों करणों से कमजोर है, तो उसको उन दुष्कृत्यों से अपनी बुद्धि को हटा लेना चाहिये। दीक्षा के अवसर पर गुरु के द्वारा प्रदत्त शिवलिंग को और पंचाक्षरी मन्त्र को स्वीकार कर लेने वाले शिवभक्त को तभी से प्राण और लिंग की अविनाभाव संबन्ध से अपने भीतर लिंगैक्य के रूप में अभेद-भावना करनी चाहिये। वह शिवभक्त अपने देह की प्राण के रूप में और प्राण की लिंग के रूप में भावना करे। इस तरह से प्राण और लिंग की परस्पर अनुस्यूति की भावना करने से इनकी परस्पर की पार्थक्य-भावना समाप्त हो जाती है। प्रायश्चित्त की विधि को छोड़कर यहाँ इस प्रकार वीरशैव क्रम का परिचय दिया गया है।।४५-५१।।

ऐसा प्राणलिंगी वीरशैव ऊपर बताये गये व्रतों के पालन में विघ्न उपस्थित होने पर

प्रायश्चित्तनिरूपणम्

प्राणलिङ्गी व्रते लुप्ते हस्तखड्गादवञ्चयन् ।।५१।।

मुखं पङ्कजवच्छिन्द्याद् वीरभृत्यस्य लक्षणम् ।
यो वा चोत्पाटयेज्जिह्वां शिवनिन्दारतस्य तु ।।५२।।

त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य रुद्रलोकं स गच्छति ।
शुद्धशैवो विशेषेण मन्त्रयन्त्रप्रचारणात् ।।५३।।

शुद्धो भवति लोपेषु प्रायश्चित्तविधानतः ।
स्वेष्टलिङ्गे परिभ्रष्टे नष्टे दग्धे हृतेऽपि वा ।।५४।।

नीते वा मूषिकाद्यैश्च काककौलेयवानरैः ।
जप्त्वा लक्षमघोरस्य विधिना लिङ्गकान्तरम् ।।५५।।

प्रतिष्ठाप्य नयेच्छुद्धिं पिण्डिकायां तथैव च ।
व्रतस्य च क्रियालोपे नियमस्य विलोपने ।।५६।।

गायत्र्यष्टशतेनैव विशुद्धिमधिगच्छति ।

निगमनम्

सामान्यं मिश्रकं चैव शुद्धं वीरं चतुर्विधम् ।।५७।।

अपने हाथ में खड्ग लेकर बिना हिचकिचाहट के अपने सिर को कमल के समान काट डाले। वीरशैव का यही मुख्य लक्षण है। जो वीरशैव शिव की निन्दा करने वाले की जिह्वा उखाड़ फैकता है, वह अपनी २१ पीढियों का उद्धार कर शिवलोक प्राप्त करता है। शुद्धशैव सदोष होने पर मन्त्रों और यन्त्रों की सहायता से और प्रायश्चित्तविधि का अनुसरण कर पुनः शुद्ध हो जाता है। अपने इष्टलिंग के अपवित्र हो जाने, नष्ट हो जाने, जल जाने या किसी के द्वारा उठा ले जाने पर अघोर मन्त्र का जप करने के उपरान्त पुनः दूसरे लिंग को पीठिका पर स्थापित कर विधिवत् धारण करना चाहिये। व्रत की क्रियाओं का या नियमों का लोप हो जाने पर १०८ वार गायत्री मन्त्र के जप से उसकी शुद्धि होती है।।५१-५७।।

इस तरह से हे षडानन ! तुमको मैंने सामान्य, मिश्र, शुद्ध और वीर नामक चतुर्विध शैवों से संबद्ध सभी बातें संक्षेप में बता दी हैं। इसके साथ ही तत्त्वभेद से लेकर मन्त्रकील पर्यन्त दस पटलों वाले इस शुद्धाख्य तन्त्र का हे शोभन व्रतवाले कुमार ! मैंने तुम्हें उपदेश किया है।।५७-५९।।

तत्सर्वं हि समासेन तव प्रोक्तं षडानन ।
तत्त्वादिकीलकान्तानां पटलानां दश क्रमात् ।।५८।।
भेदाः शुद्धाख्यतन्त्रस्य कथितास्तव सुव्रत ।

।। इति श्रीवातुले शुद्धाख्यतन्त्रे कीलं नाम
दशमः पटलः समाप्तः ।।१०।।

।। समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।।

❋ ❋ ❋

।। इस तरह से श्री वातुलशुद्धाख्य तन्त्र का यह मन्त्रकील नामक
दशम पटल पूरा हुआ ।।१०।।

।। इसीके साथ यह ग्रन्थ भी समाप्त हुआ ।।

❋ ❋ ❋

श्लोकार्धानुक्रमणी

***

हमारे अन्य प्रकाशन

	सजिल्द	अजिल्द
१. लिङ्गधारणचन्द्रिका — नन्दिकेश्वर शिवाचार्य	रु.१५०	रु.१२५
२. ब्रह्मसूत्रश्रीकण्ठभाष्यम् — सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.१५०	- -
३. वीरशैव अष्टावरण विज्ञान —डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी	- -	रु.५०
४. सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा — डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी	रु.२००	- -
५. निगमागम संस्कृति — पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.२००	रु.१५०
६. सूक्ष्मागमः — सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.१५०	रु.१२५
७. चन्द्रज्ञानागमः — सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.२००	रु.१७५
८. मकुटागमः — सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.१२५	रु.१००
९. कारणागमः — सम्पा. पं. रामचन्द्र पाण्डेय	रु.१७५	रु.१५०
१०. निगमागमीयसंस्कृतिदर्शनम् — पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.३००	रु.२००
११. पारमेश्वरागमः — सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.३५०	रु.२००

१२.	**Candrajñānāgam**		
	—Tr. by Dr. Rama Ghose	Rs.300	- -
१३.	**ईशावास्योपनिषद्**		
	— सम्पा. पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग	रु.१५०	रु.१००
१४.	**केनोपनिषद्**		
	— सम्पा. पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग	रु.२००	रु.१५०
१५.	**सिद्धान्तप्रकाशिका**		
	— सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.१००	रु.७५
१६.	**Makuṭāgama**		
	—Tr. by Dr. Rama Ghose	Rs.175	Rs.150
१७.	**शक्तिविशिष्टाद्वैततत्त्वत्रयविमर्शः**		
	— डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी	रु.३००	रु.२००
१८.	**अनुभवसूत्रम्**		
	— सम्पा. पं. गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर	रु.२००	रु.१२५
१९.	**सिद्धान्तशिखोपनिषद्**		
	— सम्पा. पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग	रु.३५०	रु.२५०
२०.	**ब्रह्मसूत्रशाङ्करीवृत्तिः**		
	— सम्पा. पं. केदारनाथ त्रिपाठी	रु.२५०	रु.१५०
२१.	**सिद्धान्तसारावलिः**		
	— सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.५५०	रु.४००
२२.	**श्री गुरुगीता**		
	— सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.२००	रु.१२५
२३.	**शिवाद्वैतदर्पणः**		
	— शिवानुभव शिवाचार्य	रु.१५०	रु.१००
२४.	**सिद्धान्तशिखामणि मीमांसा**		
	—सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.३५०	रु.२५०
२५.	**देवीकालोत्तरागमः**		
	— सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी	रु.१५०	रु.१००
२६.	**Pārameśvarāgama**		
	—Tr. by Dr. Rama Ghose	Rs.700	Rs.550

२७. **संस्कृत वाङ्मय में वीरशैव साहित्य**
—एस. अक्कूरमठ (सम्पा. पं. प्रभुनाथ द्विवेदी) - - रु. १५०

२८. **ऋग्वेदस्यप्रथममण्डलस्य सायणवेंकटमाधव-भाष्ययोस्तुलनात्मकमध्ययनम्**
— डॉ. प्रमोदिनी पण्डा रु.४०० - -

२९. **तन्त्रागमीय धर्म-दर्शन (२ भाग)**
— पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी रु.१२०० रु.९००

३०. **साम्ययोगमीमांसा**
— मुकुट बिहारी लाल रु.३५० रु.३००

३१. **भारतीय संस्कृति का समग्र स्वरूप**
— पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी रु.३५० रु.३००

३२. **संस्कृत वाङ्मय वल्लरी**
—डॉ. गंगाधर पण्डा एवं डॉ. प्रमोदिनी पण्डा रु.३०० - -

३३. **मुण्डकोपनिषद्**
— सम्पा. पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग रु.५०० रु.४५०

३४. **वातुलशुद्धाख्यतन्त्रम्**
— सम्पा. पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी रु.३०० रु.२००

प्रकाशनाधीन ग्रन्थ

३५. **तन्त्रागमीय ज्ञानकोष**
—सम्पा. डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी

३६. **श्वेताश्वतरोपनिषद्**
— सम्पा. पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग

***

दूरभाष : (०५४२) २४५०५४६

शैव भारती शोध प्रतिष्ठानम्

डी. ३५/७७, जंगमवाड़ीमठ,
वाराणसी - २२१ ००१ (भारत)

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
डी. 35/77, जंगमवाडीमठ
वाराणसी-221001

ISBN 81-86768-56-4
Rs. 300/-